गुसाईं-गुरुबानी

अध्याय

रतन ज्ञान

अमृतवाणी

सम्पादक

खरैतीलाल भास्कर

इन्द्रमोहन भास्कर

स्वर्गीय माता अतर कौर जी
तथा
स्वर्गीय पिता राम चन्द्र जी
को सादर समर्पित

प्रकाशक :
खरैती लाल भास्कर
२६ नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली - ११०००२

प्राकथन

भारतवर्ष ऐसा देश है जहां अनेक देवता, ऋषि, मुनि, साधु तथा महात्म अवतरित हुए हैं। उसी कड़ी में एक नाम आता है सतगुरु सिद्ध बाबा साईंदास जी का।

बाबा साईंदास जी का जन्म पन्द्रहवीं शताब्दी में पंजाब प्रांत के गुजरांवाला जिला में हुआ। कुछ समय पश्चात आप अपने **बद्दो** नाम के एक शिष्य, जो चीमा कबीले का एक जाट था, अन्यत्र चले गये। उस स्थान का नाम उन्होंने बद्दोकी गुसाइयां रखा। वहां उन्होंने बड़ी पूजा एवं साधना की। अब उनका नाम दूर–दूर तक फैल गया। उनकी पुण्यस्थली पर हर साल मेला लगता था जिसको 'यज्ञ' के नाम से जाना जाता है। इस दिन गुजरांवाला क्षेत्र के सब कालेज एवं कोर्ट बंद रहते थे। वह मेला अब जनकपुरी के निकट उत्तमनगर में लगता है।

माना जाता है कि बाबा जी की भेंट अपने समकालीन गुरु नानक देव जी से भी हुई थी। उस भेंट का वर्णन बाबा जी ने इस प्रकार किया है:

नानकदेव तहां चलि आये, रूप कलंदर का तनि आये।
साईंदास तबि मनि मुस्काये, नानक हमको देखन आये।
हम तुम एक नगर के भेदी, इहां कहवो नानक बेदी।
नानकदास कहै मुस्काई, साईंदास तुम धन कमाई।
चर्चा करी भक्ति की भारो, बहुरो उचरियो नाम मुरारी।
सुखमणि सदरि नानक गायो, ज्ञान रतन साईंदास सुनायो।
जुगल बाति परस्पर कीनी, सैलो लई कड़ाही दीनी।

बाबा जी ने 'गुसाईं–पंथ' की नींव रखी और भक्ति भरे ग्रंथ 'गुसाई–गुरुबानी' की रचना की।

हमारी यह इच्छा है कि बाबा जी के सब सेवक इस अमृतरूपी ग्रंथ का पान करें तथा लाभ उठायें। इसी हेतु हमने दो अध्यायों को लिपिबद्ध कर दिया है।

खरैतीलाल भास्कर
इन्द्रमोहन भास्कर

हस्तलिखित मूलग्रंथ साहेब के प्रथम पृष्ठ का चित्र

ओं स्वस्ति श्री गणेशाय नमः

॥ अथ रतन ज्ञानि लिष्यतें ॥

दीनानाथ दयाल प्रभ दुष दूर कर्न विंसवास।
औगिनि मेटे गुण कर्न गुरि पूर्न साईंदासि॥
बाबा रामानंदि जिस सिमरे होति अनंदि।
जिह समरनि ते पाईए लक्ष्मी परिमानंदि॥
गुरि नरिहरि पूर्न सकल करिणा बुद्धि विवेक।
औरि नहीं कोई आसरा एक तुम्हारी टेक॥
गुरि कांशीदासि के दर्स कों सुरि नरि धरे ध्यान।
मनि की देत है वांछना पूर्न पुर्ष निधान॥
विहारीदास केविल गुरि भेटआ मिटि गए सकल विकार।
कर्मचंदि गुर चर्न लगि भौजलि उतिरे पारि॥

सलोकु[२]—ग्यानि रतन जपि जौ पडै सुनते मुक्त सिधाह।
साईंदास गुरि चर्न लगि भ्रम भौ जलि तिस नाहि॥

---

१. **अथ रतन ज्ञानि लिष्यते**—रतन ज्ञानि बाबा साईंदास जी की रचना है। इसलिए "अथ रतन ज्ञानि लिष्यते" यहां से बाबा साईंदास जी की वाणी समझी जाएगी किन्तु यहां "दीनानाथ दयाल प्रभ दुष दूर कर्न विसवास" से लेकर "कर्मचदि गुरचर्न लगि भोजलि उतिरे पारि" तक बाबा सांईंदास जी की वाणी नहीं है। वस्तुतः यह गुसाईंयों की "अरदास" (प्रार्थना) है। इस में—साईंदास, उनके सुपुत्र रामानंद, नरहरि तथा परवर्ती गुरु काशी-दास, बिहारीदास और कर्मचंद आदि को नमस्कार किया है। इसके अनन्तर ज्ञानरत्न का प्रारम्भ है।

२. **सलोकु**—यह श्लोक का अपभ्रंश है। यह हिन्दी का दोहा छंद है। रचना के प्रारंभ में इसी श्लोक या दोहा का प्रयोग है। अनंतर २० अर्द्धालियों या ५ चौपाइयों के प्रयोग के बाद दोहा या श्लोक मिलता है। ज्ञानरत्न की रचना इसी रूप में प्राप्त है।

आदि नरंजनि जानियो निर्भौ तुम निरंकारि।
अगिम अगोचरि सुंनिभै रचना राचन हारि[1]॥

१

आदि निरंजनि हय निरंकारा। रहिता सुंन्नसमाध निआरा॥
वपि विस्थारि कीनो विस्थारा। उपिजे तीनि देव अधिकारा॥
अलिष पुर्ष अकास बनायों। पोनि थंह्मि मिल पौन उठाओ॥
पौन मध्य जब तेज नवासा। ताते जलि धरि कीनी आसा॥
जलि के ऊपरि धरिन बनाई। आसा मनिसा तहां समाई॥
धर्मधुजा ते धौल विचारा। धर्ती राषे राषन हारा॥
तांका बंधन वासव कीना। पौनि थह्म दस चारि प्रवीना॥
जोति प्रकास चंदि रवि तारे। रचना राची राचनहारे॥
जो जो जीवि जनिम जुगि करिआ। सोई सोई नाम ताह फुनि धरिआ॥
माया मोह पटल जवि कीआ। तापरि उरिझ रह्यो एह जीआ॥
अलिष पुर्ष की धारना क्या कोई सके विष्यानि।
साईंदास अछरि साधू हुकम प्रभ सो मति हिर्दे मान[2]॥
रंगि रंगि बहु रंगै मै सभ रंगि रहयों संमाई।
जेता बूझे प्रभ साईंदास तेता दीओ बताई[3]॥

२

कौनि वेला कौन बीचारि। रुति थित जुगि तहा कौंन वारि[4]॥
नछत्रि लग्न जोगि वीचारि। जिह समे, होइआ ओंकारि॥

---

१. **आद नरंजनि जानियो**—इस दोहे में बाबा साईंदास जी ने एक अगम अगोचर तत्त्व से जिसे "आदि निरंजन" कहा है, सृष्टि रचना हुई मानी है। यह सृष्टि किस प्रकार बनी आगे की पंक्तियों में इसी का वर्णन है। यहां सृष्टि रचना सम्बन्धी सारा पौराणिक वर्णन सामने आ जाता है।

२. **अलिष पुर्ष की धारना**—यहां सृष्टि रचना का वर्णन समाप्त है।

३. **रंगि रंगि बहुरंग में**—प्रभु की सर्वव्यापकता वर्णन है।

४. **कौनि वेला कौन वीचारि**—यहां ओंकार स्वरूप अव्यक्त परमात्मा के अजन्मा होने का वर्णन है। यही बात गुरु नानक देव जी ने रौरास में कही है। तुलना परिशिष्ट में देखिए।

ओंकारि सभ अपर अपार। सभ रचना सोई राचनिहार॥
सुर्ति शास्त्र सिंमृति वर्न भेष। सभ औरे औरे पूछ देप॥
पूछयां सुने सुनयां मन लेइ। तांकों सतिगुर परिचा देइ॥
परिचे की मनि कों परितीति। तबहूं टुटे भर्म की भीति॥

षगि नगि जगि मगि होइ रह्यो इह मनुआ मनि पोह।
साइंदास गुरि चर्न लगि मलि तजि निर्मल होइ॥
सूषमि सुर्त विचार के आनंदि मगिन भयंति।
कहु नरिहरि गुरि क्रपा ते पसरी किर्ण अनंति॥
अलष अगम्य अगाध प्रभि सुरि नरि जांकी सेव।
अनंदि लै मस्तक धर्‌यो श्री चर्न कविल गुरि देवि[1]॥

३

गुरि चर्नी मति चित जनि राषी। तांते सुनि द्रोपत की साषी॥
गुरि चर्नी राता प्रहिलादि। पिता संग कीनो उपिवादि॥
नार्दमुनि का राष्यो मान। गुरि चर्नी पावन परिवान॥
गुरिगोविंद से नाहीं भेद। पूछो शास्त्र सिंमृत वेद॥
सभ सभ नीच ऊंचा तेरा नाम। गुरि विनि कौनि बतावै थाउ॥
थाउ लहे दरि ठाक न पावे। मिल रहे विछर्‌या नहीं जावे॥
मिलना हो सतिगुरि की दात। साइंदास फरि जनम न जाति॥

अस्थावर जंगम सभै सर्व व्यापी ताह।
साइंदास नाम अनेक अनंति गुनि जपि जपि संति तराह[2]॥

४

तेरे नाम सो तुही अनंता। अंतु ना पावै कविला कंता[3]॥
दीनानाथ नाथन कों दाता। श्रीमोहिन मनि हितकरि जाता॥
अघनासन गोपाल गोसाई। सभ मै पूर रह्यो सभ थाई॥

---

१. **आनंद लै मस्तक धर्‌यो श्रीचर्न कविल गुरि देवि**—यहां से "गुरु महिमा" वर्णन प्रारंभ है।

२. **साइंदास नाम अनेक अनंति गुनि**—यहां से एक ही प्रभु के अनेक नामों का वर्णन है।

३. **कविलाकंता**—कौला या कविला शब्द कमला के अपभ्रंश है। कमलाकांत-कविला कंता।

विशु रूप धर्नी धार्न । कर्णासिघ सभै करि तारन ।।
तू करिता कर्नहारि अविनाशी । केविल ब्रह्म तू सर्वनिवांशी ।।
निर्भौ निरंजन निरंकार । नाम न अन्त अन्त नहीं पार ।।
प्रभ क्रपाल पूर्न वीचारी । गर्व देन प्रभ गर्व प्रहारी ।।
अलिष पुर्ष पततां को पाविन । नारिसिंघ परिसराम अरि बावन ।।
राम क्रष्ण गोविंद बनिचारी । जुगि जीवनि गोवर्धन धारी ।।
तार्न तर्न सरन जगि तार्न । भगित निधानि सो लाजि निवार्न ।।
गोविंद केशवि संतन सुषिदाई । जुगि जुगि जोति सुजादिवराई[1] ।।
कर्म धर्म सभाह[2] रहंता । साईंदास प्रभ रूपि विम्रंता ।।
तीनि ताप तन को भए आदि उपाध विम्राध ।
साईंदास जिहते पाईए परमपद, सो उत्तम दर्सनिसाध[3] ।।

५

दर्सन ते उपिजे मनि बुद्धि । दर्सन ते तनि होवे सुद्धि ।।
दर्सन ते मैल मन ते जाइ । दर्सन चोटा बहुड न षाइ ।।
दर्सन सिध साध वैरागी । दर्सन ते दुरमत उठ भागी ।।
दर्सन सिद्ध साध संतोष । दर्सन ते तनि रहे निर्दोष ।।
दर्सन दूष भूष कों नास । दर्सन मुक्त परायण वास ।।
दर्सन होइ अंतर की प्रीति । दर्सनि ते दुरमति मिल जीत ।।
दर्सन ते विगसे घटि चन्दा । दर्सन ते मनि होइ अनंदा ।।
दर्सन पर्सन प्रेम रस जि पूरण बडि भागि ।
साईंदास प्यास मिल रहित दोष अनिरागि ।।
नरिहरि नाम न वीसरे सदा साध के संग ।
रसना रसीए राम रस औरि न लागे रंग ।।

---

१. सुजादिवराई < सुयादवराय—श्रीकृष्ण भगवान् का नाम ।
२ 'सभ मांह'—होना चाहिए (लिपिकार से 'म' छूट गया है)
३. साईंदास जिहते पाईए परमपद सो उत्तम दर्शन साध—यहां से साधु दर्शन की महिमा का वर्णन है ।

अलषकोटि ब्रह्मंडि मै सर्व निरंतर सोइ।
साईंदास जिह किह तित जानआ तुझ बिनु औरि नि कोइ[1]॥

६

तू कर्ता तुझ विनु नहीं कोई। सर्व निरंतरि बसआ सोई॥
आपे करि करि आप करावै। आपे मति आपे भरिमावे॥
आपे गुनी ज्ञानी आप। आपे देषो थापो थाप॥
आपे धर्म कर्म वीचारी। सभ मै अपुनी जोत पसारी[2]॥
जोगि जुगत जागे जुगितांई। एकों नामु सहंसी नाई॥
जिन जान्या तिना हरि लिव लाई। तेऊ वडै जिन्हा दरों वडिआई॥
दरि की दात होवै दरिवान। कागत फार परे परिवान॥
परै परिवांन तौ उपिजे सांति। साईंदास फिर जनिम न जात॥
जोग जुगत अर ज्ञान ताते सहिज समाधी होइ[3]।
साईंदास उलिट पलिट का षेलना बिर्ला चीन्हे कोइ॥
वडि भागी हरि रस जानिआ छाडि क्रोध अर काम।
साईंदास अष्टधाति सभु यगित[4] है पारस हरि कों नामु[5]॥

७

जपि तपि संजम कर्म ध्यान। सभ ते ऊंचा तेरा नाम॥
नाम जपत गज गनका तारयो। नाम जपति प्रहलादि उधारयो॥
सुति हित नाम अजामल लीना। नाम जपति ध्रू निहचल कीना॥
नाम जपति नृप कन्या तरी। वकी दैत विष प्रगिट पुकरी॥

---

१. सर्वत्र एक ही तत्त्व की प्रधानता है। आगे की पंक्तियों में इसी विषय का प्रतिपादन किया गया है।

२. **सभ मैं अपनी जोत पसारी**—जडचेतन में इसी की ज्योति का प्रसार है। गुरु नानकदेव से तुलनीय —**जाति महि जोत जोतमहि जात**।

३. जोग जुगत अर ज्ञानते सहज समाधीं होई। बाबा साईंदास सहज समाधि के लिए दो बातों को प्रधानता देते हैं—योग युक्ति और ज्ञान।

४. यगित < जगत्।

५. यह संसार अष्टधातु के समान है और हरि का नाम पारस है जिससे ये अष्टधातुएं भी कंचन बन जाती हैं। यहां से नाम की महिमा का वर्णन प्रारम्भ है।

गौतम त्रीआ चर्न लगि तरी। हरि हरि करित पार बहु परी॥
जनिक सुता हरि हरि धरी। लंका सहत बभीछनि मंदोदरी॥
हरिणाषस रांवण अरि सिसपाला। तीनि जनिम प्रभ भए क्रपाला॥
वृजिवासी हरि की गति जानी। उनि की गति हरि हिरदे मानी॥
को गुनि सुने श्रवन धरि प्रीत। को कीर्तन करे राग मिल गीति॥
को ले माला सिमरन करे। को पादागविनी तीर्थ फरै॥
को अरिचा पूजा सो चितु लावै। इकि कर दंडौति परम गति पावे॥
इक षटि दर्सन के होवै दास। इकि होइ सहाई पूर्न आस॥
इकि आतम अर्पि मिले भगिवान। नविगुन भगति[1] सो गुणानिधान॥
जो जो इनि भगिती चितु लावै। सुनित वकित बैकुंठ सिधावै॥
नाम जपै संतन की साषी। नाम जपै द्रोपत पत राषी॥
नाम जपे सभ सुषकों दाता। नाम जपै पांडवि को भ्राता॥
नाम जपे सोई हरि को दास। ज्ञानि रतन चीन्हे साईंदास॥

अविगत गति मै सभ बसे जाका नामु बिअंति।
जो कछु कीया सो तुम कीआ मैं कित विध पावो अंतु[2]॥

८

अंतु नहीं जीई अंतु नहीं जंत्री। अंतु नहीं पौण पाणी नछत्री॥
अंतु नहीं धर्नी अंतु नहीं गौणी[3]। अंतु नहीं निसी अंतु नहीं रैणी॥
अंतु नहीं सुरिती अंतु नहीं ध्यानी। अंतु नहीं वेदी अंतु नहीं ग्यानी॥
अंतु नहीं रंगी अंतु नहीं रूपी। अंतु नहीं तडाग अंतु नहीं कूपी॥
अंवृति महात्म गति क्या कहीए। निज पद साध संग ते लहिए॥
साईंदास अनंदि प्रभ मूल। सुंन्न सविद राच्यो स्थूल॥

एको एक अनेक मै घटि घटि कीयों निवास।
पूर्ण पूरे सभन को प्रणवति साईंदास॥

---

१. **नविगुन भगिती**—यहां नवविधा भक्ति का उल्लेख है। साईंदास ईश्वर प्राप्ति में इसे भी साधन मानते हैं।

२. **मैं कितविध पावों अंतु**—यहां प्रभु को बेअन्त (अनन्त) माना है, उसी अनंत की महिमा गाई है।

३. **गौणी > गगनी**

अंतु न पावे जगितगुर हरि जी अगम अगाहि।
हरिद्वारे केती षडी करिती सिफत सलाह[1]॥

६

केते वेद ब्रह्मे मुष गांवे। हरि जी तेरा अंतु न पावे॥
केते शंकरि धरे धआन। केते विह्न[2] चढति निशान॥
केते इंद्रासन सुरि इंद्र। केते वासक सेस फुनेन्द्र॥
केते जोगी धियान लगावे। केते सुरि किंनरि गुनि गांवे॥
केते असरि रहे हरिद्वारि। अंतु न पांवे अलिष अपारि॥
केते रंगरूप बहु भेष। केते दरि दरि वांनी सेष॥
केते धर्म कर्म बिचारी। कागिज मसि केते लेषारी॥
साति सिंध करियों मसि वाणी। कागति धर्न गगन का वाणी॥
भारि अठारा लिष्यन लाए। एह थौड़े वहु गुनि अधिकाये[3]॥
जो लिषिए सो हरि का रंगु। दर्सन होइ साध के संग॥
सभ अंतिर प्रभ तेरी बासु। ज्ञानि रतन चीन्हे साईंदास॥

गातनि गरियों गर्ब मैं ना हरि भजिनि पिआस।
जनिनी गर्भ किस राषयों पोटि बांध दस मास[4]॥

---

१. यहां मूल ग्रंथ में शब्द 'दरिद्वारे' है पर उपयुक्त 'हरिद्वारे' ही लगा। हरि के द्वार पर कई उसकी अगाध महिमा को गा रहे हैं। पर कोई भी उसका अंत नहीं पा सका। यहां 'सिफत सलाह'—ये शब्द फारसी के हैं। प्रशंसा और गुणवर्णन करना इनका अर्थ है।

२. 'विह्न' यह शब्द विष्णु है, इसे प्राचीनकाल में 'को इस रूप में लिखा जाता रहा है।

३. सात सिंधु ही स्याही बनाऊं धरती तथा आकाश को कागज और सभी अठारह भारयुक्त वृक्षराशि को लेखनी बनाऊं तो भी प्रभु गुण लिखे नहीं जा सकते। तुलनीय—

कबीर सात समुंदहि मसु करउ कलम करउ बनराइ।
बसुधा कागदु जउ करउ हरिजसु लिखनु न जाइ॥

संतकबीर सलोकु—८१ (डॉ० रामकुमार वर्मा)

४. यहां से प्रभु के गुणों का वर्णन है तथा प्रभु को भूलकर संसार में लगे जीवों को चेतावनी दी है।

१०

मैं औगिनहारि कोई गुनि नाही । हरि हिरदे ते किउ बिसरांही ॥
तांका नामु नहीं किउ भाक्ष्यो । अग्नि कुंड ते जिन प्रभ राष्यो ॥
जिउ तंबोली राषे पान । इउ तूं राषे गुणानिधान ॥
तेरा कौन सहाई वाला । जिन गर्भ वीच करि प्रतिपाला ॥
नैन नासका श्रविण वणायों । मुषि वोलति वह लाड लडायों ॥
करि अरि चर्न गही पग धारे । नषि अंगिरेष सो रोम सवारे ॥
जीविन नाम मर्न कें ताई । गर्भे अंतर जपे गुसाई ॥
गर्भते निकस आयों संसार । हरि गुनि बैठा मूढ बिसार ॥
माया मुष लागी जवि मीठी । नेत्री सुर्त पसार्न डीठी ॥
रच रहआ जबि दूध के स्वादि । बाला जनिम गवायों वादि ॥
साईंदास नाम हरि चेति । भी मनि छुटे नाम के हेति ॥

रे बाल काल सरि सांधयों मिर्ग भयों इह जीय ।
अविपल तो विसवास क्या सो भोगो जो कीय ॥

११

माता पिता भाई संगि षेला । धर्म न सुर्त भयो जगि मेला ॥
दारा सुतु सो मोह बढायों । धनि अरि धाम देष बहुरायों ॥
मनि अभमानि सु लोए जाता । त्रैढी चाल अंध मदि माता ॥
नहीं सूझति कोई मीति न भाई । हौमै धनु मदि वडी वडिआई ॥
राजछत्र चविर सिरि झूला । मनि अभिमान देष करि भूला ॥
रे सेर चूंनि विन सकल विरान । इह तुम जान लेह सुनि काना ॥
सेति मिले वग उडिरे कागा । जोविन देष देह ते भागा ॥
पिंडरि केस भए अविचारी । जूया षेलति बाजी हारी ॥

कबिहूं चेति अचेत मनि जूये जनिम नि षोइ ।
पछतावा पाछे रह्यो रास वोड किति रोइ ॥
जिउ जांनो तिव ही करों जति कति समरन सार ।
साईंदासि नाम हीनि गुनि वाहरा ध्रिग जीवनि संसारि ॥
अनाथ जी सभ तुम कीए तुम कित विध हये अनाथ ।
वर्न नि साकों मात्रिकी तेरी कथा अगाधि ॥

आपि आपि ते साजि के न्याजि करी बहु भांति।
निआज विराज पछान के सभ एक पुर्ष की दाति[1]॥

१२

पूर्न पूरे सभ विचारी। कोऊ दाता कोऊ दीन भिषारी॥
कोऊ भूपत को ठाढे द्वारि। कोऊ छत्रपति कोऊ ऊपर ढालि॥
कोऊ अस्व गज रथ केंऊपरि चडिते। कोऊ उनि के आगे पाणी भरिते॥
कोऊ पहिरे कोऊ उतारे। इक पाणी सेती चर्न पषारे॥
इक पषे सेती पौण भुलावै। इकि टुकड़े मंगि मंगि भोजन पावै॥
इकि दाते देनहारि प्रभ कीने। इक आतम परिमातम चीन्हे॥
इक जोगी इक जंगम ध्यानी। इकि मुनि सिद्ध साध इक ग्यानी॥
इक जटि मुंडि जती संन्यासी। इक तीर्थ भ्रमत फरित वनिवासी॥
इक मौनी नगिन फरे दगंबिर। इकि भगवे करि करि पहिरे अंविरि॥
केऊ ब्रह्मचर्य केऊ ब्रह्मचारी। कोऊ निहस्वादी कोऊ पौन अहारी॥
कोऊ तपि ध्यानि षटि शास्त्र वकिते। कोऊ षटि कर्म जुगित सो रहते॥
इकि धोती संजम रहति सुचीलं। इकि होति असोच सदा जु कुचीलं॥
सुच असुच तुमते नहीं दूरं। सभ मह तुही रहया भरि पूरं॥
सर्व अंगि प्रभ कीयो निवास। इहि विध जाचे साईंदासि॥

औगिन राचे गुनि तजे या मनि छठे गवारि।
आइओं एक छिन पलक मै काल लेत करि वारि॥

१३

तेरा कीआ सभ दिआल तूं किसि ना कीआ।
सभ से माह वरतिआ जलि थलि जो जीआ॥
जेते जलि थलि जीवि समांने। जेता जां को तेता आने॥
जांको वाध घाट नहीं देति। पूर्न पूर पूर सभ लेत॥
सभ ही अऊरे तुम ही पूरा। वाज वाजि के फाटे तूरा॥

बाजे फूटे रे भैआ रहे बजाविन हारि।
बहुडि बजावे थिरु रहै साईंदास एक बिना सभ छारि॥

---

१. प्रभु की कृपा के कारण अनेक प्रकार की रचना हुई है। उसी एक पुरुष की सबको देन है। सभी में वही एक पूर्ण है। रूप-रूप अलग-अलग है। कोई भी हीन नहीं और कोई भी अपूर्ण नहीं। "पूर्ण पूरे सभ विचारी।"

साहिबु एक अनेक गुनि गिनिति न आवे मोह।
कोटि रसना सों जपु करों अंतु न पावे तोहि॥

१४

गुनि अनेक तेरे रूप अनंता। नामि बिअंति सो कैसे अंता॥
अगम गम्य विर्ले को आवै। जांको सति गुरि बूझ बुझावै[1]॥
बूझा पडै परिम सुष होय। तुरीआ ततिकों बूझे कोय[2]॥
मनि विसवास आत्म रस ज्ञाना। मनूआ उलिटयां मनि मांहि समांना॥
मन अरि ब्रह्म एक जवि भैया[3]। प्रगिटी जोत तिमरि नस गियां॥
पिंड षंड ब्रह्मण्ड सु लीना। सुन्न सविद अपिती जपतीना॥
आत्म भेद परिचा भैयां। शिवि नगरी में वास लिया॥
तत्त सविद अनेक अनहद बानी। सुनि-सुनि सविद सो सुर्त पछानी॥
नाम निरंजणि होति प्रकाश। इहि विधि जांचे साईंदास॥

आदि अन्त की धारना करिना बुद्धि विवेक।
ग्यानि ध्यानि सब सरि रहे पसरी किर्न अनेक॥
रजि तम सांतक तीन गुनि[4] चौथे पदि अलसानि।
लिव लागी धुनि जहां ते साईंदास तहा समाने प्रानि॥

१५

त्रय गुनि थकत पदि चौथे अलिसाना। तुरीआ तत मैं जाइ समाना।
निहि कंचिन जलि दुविकी पाई। भ्रम वादिर तहा गियों वलाई॥

---

१. **अगम गम्य विर्लेको आवे**—वह परमात्मा अगम्य है किसी विरले को ही, गम्य है अर्थात् उसका ज्ञान होता है किसे—'जांको सतिगुरु बूझ बुझावे।" यहां 'गुरु' के महत्त्व का स्पष्ट उल्लेख है।

२. **तुरीआ तत्त**—तुरीय तत्त्व चतुर्थ तत्त्व ब्रह्म है। शेष तीन हैं——जागृति, स्वप्न सुषुप्ति।

३. जीव और ब्रह्म के ऐक्यभाव का यहां वर्णन है। तादात्म्य होते ही एक ज्योति (ज्ञान की ज्योति) प्रगट हुई जिससे अंधकार (अज्ञान) नष्ट हो गया।

४. चौथे पद ब्रह्मपदमें 'सायुज्य' मुक्ति होने पर रज तम सात्विक तीनों गुणों से रहित होना पड़ता है। कारण निर्गुण (गुणों से रहित) ब्रह्म में मिलने के लिए जीव को भी निर्गुण (इन तीनों गुणों से रहित) होना पडता है।

प्रगिटि चिह्न दिषलाविन लागा। राग द्वेष परियों अनिरागा।
भौना ठा अनि भैं[1] मिले विन श्रविनि सुन ध्यान।
साईंदास नैन बिना जो देषना गुप्तचिह्नि परिवान॥
बिनु देहा ध्यावित रहे बिन धुनि धरे ध्यान।
साईंदास तवि जानीए ठौडि बिना निशान॥
विमल सरोवरि मनि बसे अनिभै अगिम अपारि।
साईंदास सतिगुरि ही ते जानीए ततिपदि को विवहारि॥

१६

अगम गम्य की कहज सुनावे। समझ पडैं कछु कहिन नि आवै॥
कहिन सुनिन ते भया निआरा। सहिज समाध सदा जु षुमारा॥
अलिमस्ती लिव लागी जांको। जम जंजाल करे क्या ताको॥
बंधन छूटे मुक्त षलौना। चंदि सूरि मिल पौन विलौना॥
जांका सीस सोई हो रहया। साईंदास कछु जाय नि कहया॥
सभ का दावा धरत है साहब अलष अभेवि।
साईंदास जिनि प्रेम अपना जानआ सोई साध गुरुदेवि॥

१७

सभ को सेवक साध कहावे। सो सेविक जो साहवि भावे॥
साहिवि जागे सेवक सोवे। माषनि कहा जु नीरि विलोवे॥
साई सुर्त सविद जो लागी। तत्त विचार भयो वैरागी॥
तवि जान्या जवि चेतन भया। प्रगिटी जोति तिमर नस गिया॥
अनिहदि मिल आनन्द हुआ। साईंदास तवि जीवित मूआ[2]॥

---

१. भौना ठा अनि भैं मिले—यहां भौन=भवन ठां=स्थान अर्थात् घट (शरीर) में ही ब्रह्म की प्राप्ति मानी है। उसमें दिव्य संगीत सुनाई देता है। वहां विदेह की स्थिति है। वहां इन इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं है। इन इन्द्रियों से परमात्मा का दर्शन नहीं होता। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन को विराट् रूप दिखाने से पूर्व दिव्य दृष्टि प्रदान की—

"दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥"—गीता ११-८

२. साईंदास जीवित मुआ—साधक का सर्वोत्तम लक्षण है कि वह जीते हुए भी मृत है। जो संसार से लिप्त है वह जीवित है जो अलिप्त है वह मृत के समान है

सलोकु—जागृति सुफन सुषोपती। मनिमै मेटो तीनि॥
तुरिया तति विलम न करौं सारि सविद लेहो चिह्न॥
जिहि ते पाइ परिमपदि सो गुरि दीओं बताइ।
धरि निशान जबि निकसते पद नापै दस माई॥
को रसीआ इह रसि मिले विछुड्या बहुड न जाइ।
सतिगुर ऐसा चाहिए जो दुभदा देत मिटाइ[1]॥

१८

जोगी प्रान पुर्ष जब भया[2]। गुटिका पौन संग ते लिआ॥
निज भविनन में आसन कीना। संध्या कूपी वृज मेषल दीना॥
निहिकेवल जवि वटू आधार्या। जुगित उठानी सील षिथार्या॥
सचमुद्रा करि मन पहिराई। त्रिगुटी संगि डिवी दिषलाई॥
द्वादिसकपाली दसवे द्वारि। पीवै पौनि अंवृत की झारि॥
अनहदि सविदि किंङरी बाजे। सिंङी सुर्ति सदा धुनि गाजे॥
मनि अकत्र भयो जु विचारा। निर्भौ नगिरी का इह विवहारा॥
प्राप्त संतोष सुफल फल पाया। साइंदास इसिविधि जोगी जोगु कमाआ॥

सलोकु—वसुधा पिजरि नाम वीज रे मनि वोइंदआ।
कीर्तश्रविनी जिह्वा नाम कों शामु नेत्री देषलआ॥
करि चरिदाने गविन कों सील संतोष सरीरि।
साइंदास मुनि जन जगति के ऊपरे पदिम जिवे ही नीरि॥[3]

१९

ज्ञानी गुनी जोगी वैरागी। जुगि-जुगि जिनकों ताड़ी लागि॥
जिनकों लागा हरि का रंगि। ते भाले साधू का संगि॥
साध संगि मिल प्रगिटी लोइ[4]। पारिस भेटिआ कंचिन होइ॥
कंचनि होइ सकल भ्रम भागे। अषै मिलै फिर षैई[5] न लागै॥

---

१. गुरु का लक्षण—द्विविधा (दुभदा) का मिटानेवाला हो।
२. योगी जब पुराण पुरुष बन जाता है अर्थात् साधक जब ब्रह्ममय हो जाता है उस दशा का रूपक द्वारावर्णन है।
२. अलिप्त दशा—'पद्मपत्रमिवाम्भसा'—गीता ५-१०
४. लोई=ज्योति (उजाला) लौ।
५. षेई=धूल (मायाजाल)

सचु पाई ते सूचा हूआ। हिर्दे अविरि न जाने दूआ॥
एक रंगि एको घरि वास। ज्ञानी रतनि चीह्ने साईंदास॥

सलोकु—कजुलु काला रे मना जगु कजिल थी न किरठि।
मैं भी अंदिर कज्जले इकि होर भी पौदे डिठी॥
इक पै इक पेइ निकसे तेरे नाम लगि-लगि तजि-तजि भूपत राजि।
अवि कछु करिए साईंदास पलिके विनसे काज॥
पलिकें अंदिर पलिक है जो इक आई गंढ।
जनिम पदार्थ षोइयो पढ़ि पढ़िते जगि अंध॥
पडिने नू मतु दोस दे वेदि वकावित सचु[1]।
साईंदास पल्हे पिआ अविवेकीया कंचन थीआ कचु॥

२०

मनि करि नाथ पंच करि चेला[2]। सहिज मदान सदा घरि षेला॥
एक ध्यानि त्रिगुण अतीति। तांका नामु कहो रणिजीत॥
मनि रणजीते आश्रम करे। हौमा छाडि सु जीवत मरे॥
जीवित मरे[3] मिले वड्यांनी। साईंदास सोई ब्रह्मज्ञानी॥

सलोकु—जोगजुगति अरि ज्ञानि गुन सहज समाधी होय।
साईंदास उलिटि पलटि का षेलणा विर्ला चीन्हे कोई॥

२१

दयापत्र दंडा बीचार। मुद्रा मौनी पौन अहार॥
षटिरस स्वादि ज्ञान घरि बसे। सभ मनि मैला दुर्मत नसे॥
भाउ वभूति अंगि जबि लागीं। तांते कहीए मनि वैरागी॥
नांदि विंद राषै इकि ठौरा। मनिते मार्न काले जौरा॥
चंचल मनि का मारे मानि[4]। कहु साईंदास जोगी परिवानु॥

---

१. **शास्त्र झूठे नहीं**—गुरुनानक कबीर आदि के भी यही विचार।
मन को नाथ (गुरु) बनाओ पंचेन्द्रियों को उसका शिष्य (अधीन करो)

३. **जीवित मरना ही**—ब्रह्मज्ञानी का लक्षण।

४. **चंचल मन को नियंत्रित करना**—'चंचलं हि मन : कृष्ण' गीता ६-३४।
साधना में चंचल मन को नियंत्रित करना आवश्यक है।

सलोकु—साधू सहिज समाधि मै शिवि मिल शक्त हरंति।
साईंदास मध्यम थीवे आपथी सभ ते ऊंचा दिसंति॥

२२

जोगि जुगति मेल गुरि ते पाई[1]। मिटि गियों भर्म दूसरा भाई॥
रोकआ मूल विर्छ का पेटु। दो दल ऊपरि राचे षेल॥
नाडी तत्त मूल जवि जान्या। चतुर्दल छीन षटिदलि ठहिरान्या॥
अष्ट कविल दल पौना जाई। सूषम कुंडिली रहयो समाई॥
रोक्या सूर सोम गृह आइआ। साईंदास पदि गुरते पाआ॥
सलोकु—सभे नाती कूडीआ तेरी वाह अनाति।
तूं दरि इको जेहवा पुछे नाही जाति॥
जाती को जरवधि परी किस पआ करौं पुकार।
नाम उधारे प्रभ पापा के कैइ भारि॥

२३

भगिवन्त पष्प की चाल अपर्सी। तवि अपर्स[2] होवे समदर्सी॥
लोभ मोह की तोडे फासी। ताकी श्रिष्ट सकल होय दासी॥
चर्न दिष्ट ते राषे नयना। झूठे कविहूं नि बोले वैना॥
आत्म ते परिमात्म जाने। हरि का मार्ग तांवी पछाने॥
सील संजम जुगत सो रहे। इंद्री 'पंच आत्मा गहे॥
साईंदास अपर्स कहावन। जो पापा के निकटि नि आवन॥

---

१. **योग युक्ति और ज्ञान**—ये दो सहज समाधि के साधन हैं। यहां योगयुक्तियों का वर्णन है।

२. **अपर्स**—स्थित प्रज्ञ का लक्षण। वहयोग युक्तियों के बिना भी मुक्तहो सकता है। समदर्सी बन सकता है। उसी का वर्णन यहां से प्रारम्भ है—
(क) लोभ मोह से रहित होना।
(ख) नीची नज़र (चरणों पर दृष्टि)
"दृष्टिपूतं न्यसेत् पादम्," मनुस्मृति।
(ग) सत्यभाषण।
(घ) शील, संयम तथा युक्ति से रहना।
(ङ) पंचेन्द्रियां तथा मन को वश करें।

सलोकु—जलि थलि मै जो जीवि है सभै तिहारी आस[1]।
भाणे अंतरि पाईए दुष सुष भोगि विलास॥

२४

भाणे चले पौण अरि पाणी। भाणे बोले अनिहदि वांणी॥
भाणे मूरष भाणे सुरता। भाणे नरिकी भाणे मुक्ता॥
भाणे राज भाणे मुहिथाज। भाणे सर्व सवारे काज॥
भाणे चले अचल होय भाणे। भाणे कर्म अकर्म कमाणे॥
जनिम पाइ ते कहा कमाणा। जो कछु होय सो तेरा भाणा॥
साईंदास प्रभ जपिए ईस। जो कछु करे सोई जगिदीसि॥

सलोकु—रचना राची अगम प्रभ धौल धर्न अकास।
जागृति सोवित दुष सुषी भाणे अंतिर सास॥

२५

भाणे भौन रषे ब्रहिमंडि। भाणे सप्त दीप नौषंडि॥
भाणे सलिता सिंध सवारे। भाणे थलि डुंगर[2] वीचारे॥
भाणे धौल धरे सिर भार। तिस ते परे तुही निरंकार॥
भाणे भानि चले करि जोत। भाणे अंतिर ससकी योति॥
भाणे नक्षत्रन की माल। तिस ते परे तेरी टंगिसाल॥
तेरा कौनु शरीकु समरथ है कौन। तूं मेटे प्रभ आवा गौन॥
साईंदास प्रभ जपीए ईस। जो कछु करे सोई जगिदीस॥

राम नाम हरि सिमरीए मुषि से बारंवार[3]।
साईंदास गुर क्रपा ते मनि के मिटे विकारि॥
सप्तदीप नौषंडि मै परिदछनि जो देइ।
साईंदास समसरि नाही हरिभजिन जो एक वारि कहि लेय॥

---

१. मुक्ति मिलना, नरकों में जाना सभी कुछ परमात्मा की इच्छा (कृपा) 'भाणा' पर निर्भर है। इसीका वर्णन यहां से प्रारम्भ है।

२. डोंगर < डुंगर < दुर्गम स्थान (पर्वतीय प्रदेश)

३. रामनाम का स्मरण और गुरु कृपा दो ही साधन 'मुक्ति के हैं'। यहां से अब केवल नाम की महिमा का प्रारम्भ है।

२६

जो प्रथिवी सकल प्रदछनि देय। मकर प्राग कलिवत्रि सिर लेय॥
जीवित वहन देत जो प्राना। उर्द्धपाउ सो धरै धिआना॥
कोटि जनिम जुक्त सो रहे। इंद्री पंच आत्मा गहै॥
एक पलिक हरि सिमरनि कीजै। तां सम सरि कछु अविर न दीजै॥
कोटि अस्वुमेध यग्य जो कीजै। तुल्हापुर्ष दान भरि दीजै॥
सिहजा भूम दान जो करे। ले दुविकी मनि काम न मरे॥
निहि स्वादी नहीं पावे स्वादि। तजिए पनि सभ वादिविवाद॥
बोलनि छाडि मौन घरि जांह। भी हरि सिमरणि समसर नाह॥
कुंभ करे शिव द्वादश वारा। प्रान देत जहां हैहि बंधारि।
जोगि जुगित सो राषे ध्यान। पांच भूत का मारे मान॥
रेचक पूरक कुंभक साधे। वाउ पंच अग्नि तटि बांधे॥
उलिटि पौन षटि चक्र को भेदी। मगिन समाध सो भेदि विभेदी॥
नौ दरि रोंक दसवे घरि जाह। भी हरि सिमरनि सम सर नाह॥
बांधि जटा वभूति चडावै। गंग जमनि विच सुरसुरी नावै॥
अंविरि छाडि दिगंबिर होवे। निद्रा जोगि ध्यानि मै सोवे॥
पीवे पवन सहज घर पानी। मंडल गगन चडा वैवांनी[1]॥
तालाकुंजी की गति जाने। अंतिर ध्यान लाग मनि मांने॥
मूंड मुडाय होत वैरागी। निंद्या चिंद्या सकली त्यागी॥
तीरथ कोट सकल भरिमांह[2]। भी हरि सिमरनि समसर नाह॥
साधे पंचअग्नि त्रैकाल। जलि तपि सीत करे परिजाल॥
शिषर बांध कुंभनि की धारा। दयाहीनि मनि भ्रमे विकारा॥
करि पषंडि चडावै षेह। विन विवेक कित दंडे देह॥
मनि वच कर्म साच घरि रहे। जैसा हिर्दे तैसा कहे॥
बंधनि मुक्त हो जायगो प्रानी। मिटे वियोगि सहजि लिव ठानी॥
मिल सतिगुरि ऐसी मति पावै। तौ साईंदास फिर जनिम न आवे॥

---

१. वैवांनी < विमानी = जहाज़।
२. भरिमांह = भ्रमण किये।

अषे निहारे नेत्र दो रसना पीविअ पीव।
सांईंदास अकास प्याले[1] क्या भ्रमे ते अंतिर नरि षीव॥

२७

सो ज्ञानी सो पुर्षु कहावे। हौमै जल विच धर्न न पावे॥
त्रिगुण अतीत रहे लिवि लाइ। आतम भेटे तौ भ्रम जाइ॥
सभ आतम मैं एको देखा। लषी नि जाइ अलिष तेरी सेवा॥
सो सेवक साचा परिवान। जिस के रिदे वसे भगिवानि॥
भय ते भक्त भर्म को नास। इहि विध जाचे साईंदास॥

नाविन मैल सो उतरे मलन[2] न उजिल होय।
साईंदास यहि प्रर्वत संसार मनि विवेक मल धोय॥

२८

नाविण[3] सील सुजती को संसारी को दान।
छत्री नाविण वचनि को, संतोष विप्र को जान॥
राजा नाविण नीति को, स्त्री को नाविण लाजि।
भय करि नाविण मुक्त को अधिष्टा परि काज॥
जोगी नाविण जुगत को संन्यासी निरवंध।
जुगति न जाणे जोग की किति विध पावे अंधि॥
सुर्त विवेकी बोलना संजम चेता ध्यान।
साईंदास नावे ता नामु संभाल लय इति विध करो स्नान॥

सलोकु–हौमै चिंता जगत को मोह माया जंजाल।
साईंदास सांति सहज घरि पीविना अंमृति नाम निहार॥

२९

नावे सचि ज्ञानी सूरा, गुरि मति मिले ते नाविण पूरा।
सति संजम अरि सील विचारे, रिदे ध्याय दुष्टां को मारे॥

---

१. प्याले < पाताल।
२. मलन < मलिन = मैला।
३. नाविण < स्नान (नौणा पंजाबी शब्द) यहां बाह्यस्नान को शारीरिक पवित्रता का द्योतक माना है। मानसिक पवित्रता के के लिए प्रत्येक व्यक्ति का अपने कम क्षेत्र में अलग-अलग रूप है। यतिकास्नान-शील है। संसारीका दान है। इसी प्रकार आगे वर्णन है।

साध संगि सो धरे धियान, सांति ले सहज सों मनि मान।
अछरि नजिरी गुर बचिन मनि बवेक सचु पाय।
नहीं बंधनि तांकों साईंदास जीवन मुक्त सिधाय॥

सलोकु—भर्म न जाइ भगति विन चूकति नाहीं भीति।
ओंह निट रवे साईंदास जो कछु कीन्हि अकीति॥
अकीति न कवि हूं लागिही कीये न अनि किति जाह।
साईंदास कीति अकीत दोऊ मिटै हरि सर्नी जवि पाह॥

३०

शिवि दर्सन की सुर्त समावे। सांति कला तवि मनूआ पावै॥
सीतल भया थक्ति विध जाय। शिवि सोभा इस विध ते पाय॥
सहजे आवे सहजे जाइ। सहजे बोले सहिजे षाइ॥
सहजे जागे सहजे सोवे। सहजे ते त्रैलोक विलोवे॥
शिवि नगिरी मैं आसुन कीना। सविदि विचारि निहचल जलु भीना॥
तांते भर्म भूल सभ जाई। शिवि सोभा इसि विध ते पाई॥
शिवि संतोष विध जोग निवास। इहि विध जाचे साईंदास॥

सलोकु–सिषा सूत्र संजम करम जो कछु निग्म वीचारि।
साईंदास सति संजम ते जानीए परिवानि कला बीचारि॥

३१

सिषा सूत्र संजम गति पाई। धर्म नेम चलो मेरे भाई॥
जलि इस्नान त्रिसंध्या धारन। षटि कर्मा वहु विध वीचारन॥
माला मंत्रि दीक्षा गुर सेवा। संगति साध सर्वमय देवा॥
सालग्राम तुलिसी की माला। दया दानि दिज चर्न पषाला॥
पूर्नब्रह्म सदा भगिवान। मानो वेद कला परिवान॥
परिवान कला का इह विस्थार। साईंदास रिदे करो वीचार॥

सलोकु—इह मनि मारि मैदान कर षेलति सहज विवेक।
साईंदास कहिन सुनन को दोइ है जानिन कों प्रभ एक॥

३२

एको एक न दूसरा कोई। वाघ दर्सन ते ऐसी होई॥
मिहरिवांन मिहिर ते पावे। मिहिर बसो जिस आप वसावे॥
होइ निवाजि निवे सभ माही। छाडि झूठ सचु भिस्त समाही॥

रोजा रिदे संतोषि विचारे। कूजा कर्म सील वीहारे॥
आसा एक साहब की कीजै। गुरु अंतर मंतर महि दीजै॥
मुसावे आप तां सचि घरि आवे। साईं दास फिर जनम नि आवे॥
सलोकु–दान पुंन्य अरि यग्य होम नेम धर्म व्यवहार।
साईं दास सांति सहिज हरि सिमरना इहि विध दर्सन चारि॥

३३

राम नाम रसना हित कीजै। ता सम सरि कछु और ना दीजै॥
धर्म नेम संजम हितकारी। नामु जपे तांसो बलिहारी।
सहज समाध रहे लिव लाइ। आत्म भेटे तौ भ्रम जाइ।
मिल सतिगुर ऐसी मति पावे। अहि निस मिल साहबि गुनि गावे॥
निर्मल साध संग जो करे। साचा नामु लै हिर्दे धरे॥
साईंदास भजि इह विवहारि। इहि विध दर्सन कहु बीचारि॥
सलोकु–विष्यावुध व्यापे नहीं अनि इछया विसराम।
साईदास जती नामु सभ को कहे कठन धराविन नाम॥

३४

जती सोई जाने सभ माही। घटि प्रकास दूसरा को नाहीं॥
निर्ष धर्न जो पगे पसारे। केवल ज्ञानि रिदे मै धारे॥
आसा ही ते रहे निरास। वहेत सरोवरि रहे उदास॥
जती नामु कहु विध वीचारा। काम क्रोध ते रहे निआरा॥
जवि घृति अग्नि निकट नहीं आवे। हठि करि नाम सो जती कहावे॥
घृति ते उलटि भयों जवि पानी। सम सीतिल जलि अग्न समानी॥
रहंति देव को करे प्रणामा। सभ रूपनि में तेरो नामा॥
जिहि सरूप तुम ही को जानो। गुरि प्रसादि दुभदा मत हरि आने॥
सर्व अंगि प्रभ कीयों निवास। इहि विधि जाचे साईंदास॥
जहां देषौ तहा एकु है दूसरा कोही नाह।
साईंदास करे करावे आप ही तूं मनि कहा भरमाह॥

३५

बोध रूप की बुध प्रवीनी। सकल जगित कों जिहि बुध दीनी॥
जहा देषो तहा एको एका। सभ घटि पसर रह्यो जु अनेका॥
अंतिरि बाहरि एको जाने। गुरि प्रसादि साच करि मांने॥

एक ही विचर कीयो जु पसारा। जगित रचिना कों बहु विस्थारा॥
सहज समाध रहे लिवि लाय। हम तुम कौन कहेगो आय॥
कहा ते आआ कहां ते जाही। एह वीचारि देष मनि माही॥
चक्र भेदि षटि भेदि बीचारा। शंषनी चक्र भयो उजिआरा॥
तबे विल्हाय मिलो पदि माही। तहा आविण जाविण ही कछु नाही॥
साईंदास परिचे सो जांणे। एहि विध दर्सन बोध बषाणे॥

सलोकु—षटि दर्सन में लोक सभ मति मार्ग विसवास।
साईंदास जित विध किनहूं जानआ तितिही पूर्न आस॥

३६

षटि दर्सन अनिपेषन गए। अश्चर्य रूप में विसमै भए॥
किनहू सुंन्न हस्त का देक्षा[1]। उनि जान्या प्रभ एही सरेक्षा॥
दूसरे बात और जो कही। तांका भर्म हीए ते लही॥
कोऊ दंत देष पतीआना। उनि वाही ले सच करि माना॥
कानि निशानि हाथ जिन परा। उनि जाना प्रभ ऐसा षरा॥
अंग नीशान हाथ जिह लागा। बांका वाही ते भ्रम भागा॥
किनि हूं देषा पाउ पसारा। उनि जाना प्रभ यहि विवहारा॥
पूछ परो गिर तैसा जाना। औरि झूठ वाही सच माना॥
देषनि कों रचना रची, अंधि विषनि कों धयानि।
साईंदास सभ में एकों वसि रह्या समझे ते सचु मानु॥
एको एक सभ में वसे अविरि न दूजा कोय।
साईंदास जो जाने दरि दूसरा, दरि दरि काला होय॥

३७

दरि एको दरिवान घनेरे। जिनि कों दाति तेऊ दरि चेरे॥
एक जानि करि चेरा होय। ताकी चाह करे सभ कोय॥

---

१. यहां—हस्ति-अधन्याय का वर्णन है। जिस प्रकार कुछ जन्म से अंधों ने हाथी को देखा। जिस जिस अंधे ने हाथी के जिस भाग को देखा उसी रूप में हाथी को मान लिया। इसी प्रकार जगत् के अज्ञानी लोग जिस रूप से प्रभावित होते हैं, उसे ही परमात्मा मान लेते हैं, वस्तुतः परमात्मा की वास्तविकता को केवल ज्ञानी ही जानता है।

जिनि सभ ही में एको जाना। बहु विध रंगी रंग पछाना॥
षालक बन्या षलक के माही। षालिक षेल षाकि होइ जाही॥
षालक हू ते षाक जिनावे। षुशी षालक की तबिहूं पावे॥
हौमे मेटे ते अलिसाना। जीवित षाक होइ षसमाना॥
षसिम मने तौ नौ-निध पावे। जिस को अपुना आपु जनावे॥
साईंदास प्रभ अकथ नीशानि। मैं तेरी कुदिरत तो कुरिबांनि॥

सलोकु–करि करिवाल जो काल के काटति पलिक पलाहि।
तबि जान्या जवि गिर परा सनिमुष जूझे जाहि॥
जो जूझे तेऊ भले अनि झूझति किह काज।
साईंदास तवि क्या झूझणा जवि जम के भए मुथाज॥
निमिषि पलिक नहीं बीसरे हीए तिहारो नामु।
करि पसार दोउ मांगिते साईंदास यहि विसराम॥

३८

मूले चक्रे लागे बंधि[1]। इंद्री चक्रे थिर भए कंधि॥
नाभे चक्रे उलटै पौना। ताते मिट गियो आवा गौना॥
रिदे चक्रि मन कविल प्रकास। चूकी मार्न जीविन की आस॥
कंठी चक्रे टुटे ताला। जोगी होइ वृद्धि ते वाला॥
शंषनी चक्र भयों उजिआरा। जो चीन्हे सो जोगी सारा॥
षटि रस भेद गगिन गडि गाजा। जिह परिचा अनहद बाजा॥
आदि अनादि भअों ओंकार। जिह मिल सुर्त कीओ संचार॥
सुर्त निर्त मिल एको भआ। जीवि सीवि मिल संसा गआ॥
संसा गिआ भअ निहसंस। जित देषो तित एको वंसि॥
उत्तम मधम तहां को नाही। साईंदास पदि पूर्न घटि माही॥

सलोकु–मूल रोक षटि चक्र कों रिदे पंकज कों ध्यान।
संषनी ते सचु पाईए तहा समाने प्रान॥

---

१. योग साधना द्वारा मुक्ति प्राप्त करने के लिए साधक को प्राणायाम द्वारा कुंडलिनी को जागृत करना होता है। यह कुंडलिनी शरीर में स्थित छः चक्रों को पार करती हुई सहस्रदल कमल में पहुंच जाती है, यही साधक की परम-सिद्धि है। उन्हीं चक्रों का यहां वर्णन है। इनके विशेष ज्ञान के लिए परि-शिष्ट देखिए।

ब्रह्मरूप निर्लेपु है माया शक्त न कोय।
साईंदास तांको छेदे वल करे कर्मा वाला होय॥

३९

एको परिमात्म निरमाया[1]। आत्म उपिजे तांकी छाया॥
वपि धरि आत्म कर्म कमाया। कर्मा ही ते जीउ कहाया॥
जबि जीउ इति उति डोलन लागा। तांते कहीए मनि अनुरागा॥
मनि मनिसा मिल षेल बनाओं। चितवति ही ते चित्तु कहायों॥
जबि चितु फेर पिछौड़े जाया। तौ परिमातिम जाय समाओ॥
षेचरी[2] साधे चितै चितवनी जाय। भूचरी ते मनि उलिटि समाय॥
अगोचरी ते आत्म लिवे लागे। उनिमनी ते संसा सभ भागे॥
चाचरी साधे सहिज निवास। साईंदास आत्म भयो प्रकास॥

कर्म करे सोई नाम ही समझि विचार विवेक।
साईंदास कहिन सुनिन को दोय है जानिन कों प्रभ एक॥
उपिज विनस क्या कहो सभी रहअ भरिपूर।
साईंदास किनहूं नेडे जानआ किनहूं समझयो दूरि॥

४०

किनहूं राम निकट करि जाना। किनहूं दूर दूर करि माना॥
किनहूं साध लीओ घटि माही। किनहूं दिष्ट पडो कछु नाही॥
किनहूं अपिना आपु पछाना। किनहू जान्या किनहू न जाना॥
किनहूं दीपक जोति प्रकासी। किनहूं भर्म परो उरि फासी॥
साईंदास जिह इह सुष मानयों। थान थनंतर रहया समायों॥

धर्म नेम सभ कों करे घाति करे नहीं कोय।
साईंदास जप लीजिए जो कुछ होय सु होय॥

४१

राम नाम मनि लेह विचारी। भर्म की भीति चित हूं ते टारी॥
राम नाम अंमृति फल पायो। राम नाम घटि माह समायो॥

---

१. यहां से ब्रह्म अंश किस प्रकार जीव बना, इसका वर्णन है।
२. खेचरी, भूचरी, अगोचरी उनिमनी और चाचरी ये पांच यौगिक अवस्थाएं हैं। अधिक स्पष्टता के लिए परिशिष्ट में देखिए।

राम नाम जपि निर्मल होय। राम नाम जपि दुर्मति षोय॥
राम नाम जांके घटि वसग्रा। पर्म भावि ताहू मन वसग्रा॥
राम नाम महिमा कों जाने। सत्य सविद ताहू मन माने॥
साईंदास राम चित धारि। भौ जलि विषम उतारे पार॥
ब्रह्म रूप होय पसरग्रा देषो नैन पसार।
साईंदास ग्रंतिर बाहरि निर्षयो भक्त हेति चिति धारि॥

४२

देषो नैन पसार गुसाई। राम रमग्रो है सभनी थाई॥
ग्रंतिर बाहरि लेह निहार। साध संगि मिल भ्रम मृग मार॥
कुसम माह वास संचारी। रिदे प्रतीत होय जिन धारी॥
जो प्रतीति रिदे नहीं ग्रावे। सुनो वेदि सुन्न भाष सुनावे॥
गुरि जनि वचनि लीयो निज धारी। तौ प्रतीत होय मन भारी॥
कौन बचन कहिके समझायो। पूछो कोऊ को उत्तरि पायो॥
बिना जोत क्या माटी बोले। बिना जोत कहूं मार्ग डोले॥
बिना जोति कहु कहा पसारा। बिनु जोते किउ कहा उजिग्रारा॥
ब्रह्म जोत सभ ही कों जांनो। जो दीसे सो साच करि मानो॥
साईंदास जिन ब्रह्म पछाना। बाका चूका ग्राविन जाना॥

सलोकु–सरि भरिग्रा ग्रनिभै जले, को जनि पीवे जाय।
साईंदास जावित जावन जाविही फिरि सुध रही नि काय॥

४३

सरि ग्रनिभै भरिग्रा लील्हाई। जो जावे जल सो ग्रचिवाई॥
ग्रनिभै जल जिनने ग्रचिवायों। भौ जलि तिनने मनि विसरायो॥
त्रिह्ना[1] त्याग दीनी तिसताही। ताह निकटि चिंता कछु नाही॥
सहिज भयों त्रैय ताप मिटाये। शिव नगिरी ग्रासनि हि राये॥
मानि महति सभ दीयो बिसारी। घटि घटि ग्रपिनी जोत पसारी॥
दूसरा भेद रिदो मिटि गयों। ग्रपिना ग्रापु पछाने लीयो॥
साईंदास ग्रनिभै पुर माही। विचरति है संसा कछु नाहीं॥

---

१. त्रिह्ना<तृष्णा।

संसा दीनो डार के निहसंसे मनि होय।
साईंदास तांकों क्या संसय पडै जिस रिद वसिआ होय।।

४४

संसा कहा जु हरिगुन गावे। नामि जपे दुभिदा मिटि जावे।।
त्रयगुन मनूआ सूत परोवे। स्वास संमाल्ह अषंडि नहीं षोवे।।
एक स्वास हरि हरि गुनि गावे। स्वास अविर्था कोई नि जावे।।
कहु साईंदास सदा सुष होय। गुरि प्रसादि लषे जनि कोय।।

सलोकु–जिन के मनि मह उपजयों मुक्त भयो फुनि सोय।
साईंदास गुरि क्रपा सुष पाययो दुष दरिद्र भ्रम षोय।।

४५

जिन के मनि उपिजी परितीत। निर्मल होवे तांका चीत।।
भावे वेद पडे गुनि गांवे। भावे मनि मंडलि होय आवे।।
भावे उदिर भरि भरि षावे। भावे सूषम भोजिन पावे।।
भावे कपिडे अंगि हढावे। भावे नागा वनि उठि धावे।।
भावे सुंन्न सविदि सो राचे। भावे सोहं पदि सो माचे।।
भावे आप आप हो जाय। भावे अविगति अलिष लषाय।।
साईंदास बिरथा जो जाने। सो सुष सागिर मांह गलताने।।

सलोकु–हरि पदि मय गलतान जनि अविगति विसराय।
साईंदास ममता मिटी दुभदा गई सति गुरि दीओं बताइ।।

४६

सतिगुर जिन के मनि मह भायों। पर्म पदार्थ तिनहूं पायो।।
सतिगुरि जिन को दीयो उपिदेसा। ताहू का मिट गआ अंदेसा।।
सतिगुरि है दीपक की न्याई। पर्सति तिमर छिनमै दुर जाई।।
सतिगुरि दर्सन भेटति दुष गियों। महाआनंदि रिदे मह भयो।।
जीविन मूलि रिदे मह आयों। जो कछु इछआ सोई फल पायो।।
गुरि का मंत्र राष रिदे माही। राषति ही सुष सहिज समाही।।
साईंदास सतिगुरि बल जायो। तिहि प्रसादि हरि के गुन गायो।।

सलोकु–प्रथमि बुद्ध व्याकल भई औरि प्रकासयो भाय।
साईंदास आदि पुर्ष उतिपत करी सो मनि विसरयो ताह।।

४७

जनिम लीयो सागिर भ्रम आयो। कौल करारि सकल विसरायो॥
जनिनी कों पय जवि ही पीयो। भजिन गुपाल तविही तजि दीयों॥
ममतां के गृह माही आयो। मं मं वचन मुष ते सुनायो॥
तुम माता के प्रगिटि आइ होयो। विसर गियो रस माता सोआ॥
त्रैय गुनि माही पेलन लागा। गोविंद भजन रिदे ते भागा॥
कनिक कामनी हेत बधायो। अपिना मनि ताहूं चितु लायो॥
उोंकारि कों दीयो विसारी। महा मलीनि मनि ले चित धारी॥
साईंदास जिस हरि विसरायो। अंत समे बहुत दुष पायो॥
अनिहदि बाजे रे भैआ निसवासरि पल छीन।
साईंदास सुर्त निर्त ताहू भई गुरि किरपा करि दीन॥

४८

अनिहदि तार बजे मेरे भाई। निसवासरि तांको लिवि लाई॥
जांकी लिव लागी फुन तांको। अनिहदि उपज रह्यो घटि वाको॥
त्रिगुटी भेद रह्यो उरिझाई। उनिमनी मै फुनि ध्यान लगाई॥
तहां रचिति सोहं पदि बोले। इति उति मनूआ मूल न डोले॥
तहां रचत सभ सुर्त पसारे। अनिहदि सविद होत उजिआरे॥
आदागवन ते भआ निआरा। छाडि दीयो सभ सकल पसारा॥
साईंदास गुरि मंत्रि दिढायो। तिहि प्रसादि अभै पदि पायो॥
तीन भविन में विचरते सूषम अति अस्थूल।
साईंदास जब जान्या तवि निकटि है पाओ जीविन मूल॥

४९

ज्ञानी ध्यानी की सुन बाति। धरो ध्यानि बहु वेद बकात॥
अंतिर ध्यान वेद मुष भाषे। हरि रस माता अंमृत चाषे॥
जो अंमृति हरि नाम कहीजै। सो अंमृति मिल साधनि पीजे॥
सुष अंमृति हरिनामु कहावे। जांके भागि सोई जनि पावे॥
मिल साध संगि करे आनंदि। सदा बसे घटि परिमानंदि॥
जाके रिदे आनंदि हूयो। सो नरि सदा सदा जुग जीयो॥
गुरि प्रसादि साईंदास बताइयों। पूर्न नाम रिदे में आयो॥

सलोकु–परिम पदार्थ पाइयो हरि सेवा चितु लाय।
साईंदास गुर प्रसादि भ्रम उतिरयो तिमर मिटायो जाय॥

५०

पर्म पुर्ष का ध्यानि करीजे। गुरि मंतरि अंतर्मह दीजे॥
गुर मार्ग छिन मह दिषलावे। ठौरि ठिकाणा निकटि बतावे॥
दर्पन न्याई मुष उलिटि दिषाई। दिष्ट पडो ममता मिटि जाई॥
जविते उलिटि परयो गृह माही। बूझे बूझे आप आप होइ जाही॥
साइंदास गोविंद गलतान। चूको जनि को आविण जान॥
तुमरी गत्ति अपार है लषी न जावे वाति।
साइंदास ना काहू सो उपजयो विसमर हो तिह गाति॥

५१

तू दियाल अपार प्रभ होई। लषी नि जाइ अवगति गति सोई॥
दुषिभंजनि हरि दीनदआलं[1]। करणामय गोविंद गोपालं॥
परिमानंदि सदा सुषदायक। भगित वछल हरि सदा सहायक॥
गुनि निधान माधो मधसूदनि। सकल यगित पसरयो मधुसूदन॥
निर्मल जोत उजिआरा रूपा। अटल जोत प्रभु सदा अनूपा॥
गिरवरि धारो नंद के नंदन। सकल जगत ताहू चित बंधन॥
परिमानंद मुकंद मुरारी। वामिन रूप वन्यो ततिकारी॥
नारिसिंघ सूकर बपु धार्न। भगितहेत सभ काज सवारन॥
बिसु रूप धर्नी ठहिराई। सकल सरूप रचना रचाई॥
मनि मोहनि हरि कुंजबिहारी। श्री गोपाल भगितन हितकारी॥
पतित उधार्न दीनदिआला। आदि अंति मधि है रषिवाला॥
संकटि काटिन दूष निवारन। भगित हेत प्रभ रूप पसारन॥
मोहन मंछ गोवरधन धारी। पूर्ण पुर्ष श्री कुंज बिहारी॥
दीनिबंध वृजिवासि ठाकुरु। गुनिन षान सभ के गुनि आगिर॥
सर्व अंगि प्रभ रह्यो समाई। कोलापति[2] हरि त्रिभुवन राई॥
जो जो ताहू के गुनि गावे। मुक्त लहे पदि सांति समावे॥
साइंदास सुषि नाम निधान। गुरि किरपा पायो भगिवान॥

---

१. यहां से प्रभु के अनेक अवतारों की महिमा का वर्णन है।
२. कौलापति < कमलापति।

आत्म मनि बुद्ध एकु है यामै भेद नि कोय।
साईंदास जौ माने तो मान लेह कहे होत नहीं दोय[1] ॥

५२

एक रूप आत्म सभ माही। कर्म करे फुनि नामु सदाही ॥
बुधि प्रकास परिमातम होई। आत्म मनि मिल दुर्मत षोई ॥
सभ ही भीतिर ब्रह्म पछाना। अपिना आपि देष पतीआना ॥
नैनन माही दीयों दिषाई। औरि नहीं कछु नाम सुहाई ॥
एको राम रमयों सभ थाई। साईंदास सुष आनंदि माही ॥
सलोकु—जौग ध्यान षटि कोटि कों जांते जोगी होय।
बिन जाते घरि ना बसे जतिन करे जो कोय ॥

५३

प्रथमे मूल द्वारि रोकावे। दुतिए लघ दुआरे फुनि आवे ॥
नाभि कविल वाउ धरि अहे। वर्तत अदिभुत लीला कहे ॥
उलिटि पविन जवि हिर्दे आवे। आनंदि होइ अनंद समावे ॥
जीवित आइ वस्यो तिस मंदर। अतिभुति रूप वन्यो अति सुंदरि ॥
विसर गियो जो काम कमावित। करि क्रीडा तवि सुष उपिजावत ॥
त्रैगुनि गियों अगम घरि आवे। जगित मांह सभ ही विसरावे ॥
पंचि दूति का कीनो षापु। षडग लियो सोहं करि जापु ॥
अवि तो उनिमन माह समायो। भयो कछू था जो जगि आयो ॥
लीयो पछान परिमात्म सुष जविही। उनिमनि में राता जनि तविही ॥
सोंहं पदि सो रहयो उरिझाई। साईंदास गुरि दीयों बताई ॥
चित्त चक्र ना वर्ग कछु दिष्ट पडो नहीं मीति।
साईंदास अपिना आपु पछानियो निर्मल होइयो चीति ॥

५४

चित्त चक्र कछु दिष्ट न आयो। मानि गयो आतिम सुष पायो ॥
जो कछु था सोई कछु भयों। संसा सोग रिदे मिटि गयो ॥
मगिन होय पुरि माहि समाओ। अनिहदि तार बजे मनि भायो ॥
वाजित वजंत्र तारि अधिकाई। निर्त कर्त को कह समझाई ॥

---

१. साईंदास जी का सिद्धान्त—"अद्वैतवाद"।

कहे कौनु को निर्त करावे। कहे तवे जो दिष्टी आवे॥
सुंन्नि भये चक्रति भयो तति ताही। सुर्त निर्त कछु रहतो नाहीं॥
विसर गियों सभ भोगि विलासा। जवि निरभय पुर पायो वासा॥
साईंदास निरभै पुरि माही। विगसति सदा सदा सुष ताही॥
नामु अनंत्ति नि अंत्तु है अंत्तुलषे नहीं कोय।
साईंदास वेद पुरान संमृत कहति बुधि परिबांधे सोय॥

५५

नारायण दुष टारन हारा। आदि पुर्ष है प्रान अधारा॥
दमोदरि भक्तन हितकारी। परिसराम सुंदिर अधिकारी॥
दीनिबंध सुष सागिर पूरन। नामि निधान सदा भरपूरन॥
भक्तिवछलि त्रिभवनिको नायकि। गहिर गंभीर सदा सुष दायकि॥
मंछि कछि को रूप पसारन। भगित हेत सो हरि वपि धारिन॥
महाराजि गोविंद गोपालं। धर्नी धरि सभ के प्रतिपालं॥
वंसीधरि वावन वपु धारन। राम नाम अनिभै सुष कारन॥
मनि मोहनि मुकंदि मुरारी। मधिसूदन हरि प्रान अधारी॥
करिन करावित करिता आपे। जीवि जंति में रह्आ विआपे॥
नंदि नंदन हरि प्रान अधारी। राधा-रविन[1] सदा बलहारी॥
केसि-दलन वृजि वासी लाल। काली नाथ परि भए क्रपाल॥
दावानलि को प्रानि अचिवायो। निर्षासरि कों वेगही आयो॥
बाघासुरि कों ले पटिकायो। नरि कंस को मारि चुकायो॥
विस्वुरूप अविगति गति रूपा। सुंदिर रूप सदा जु अनूपा॥
परिमानंदि पूरन पति स्वामी। दीनि दियाल गुर अंतिर जामी॥
कौलापति त्रिभवनि कों राजा। सर्वअंगि उत्तम गुन गाजा॥
नारिसिंघ सूकरि बपधारन। पूर्न पुर्ष प्रभ रूप पसारन॥
करिणामय परलंवि पछारन। सुपलकि सुति कों चरित दिषारन॥
गोपीनाथ गोवरिधनि धारी। चर्नकमल निर्षत बलहारी॥
साईंदास गोविंद गुनि गावो। जपो नामु फुन और जपावो[2]॥

---

१. राधारविन<राधारमण—यहां से भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन प्रारम्भ है।
२. नामस्मरण पर बल।

सलोकु—जाके भाग फुनि जागिही हरिजनि सो चितु लाय।
साईंदास हरि हरिजन अंतर नहीं जे समझे जनि कोय[1]॥

५६

हरि में साधि साध हरि माही। जा में भेद भेद कछु नाहीं॥
जिउ तुरंगि जलि माह समायो। षिनि उपजयो छिन माह मिलायो॥
जैसे दीपक जोत समाइ। पाविक लागी तिमरि मिट जाइ॥
जैसे जीवि फुनि सीव कहावे। जहा तेज शिव तहां दिषावे॥
पै[2] में घिरत वसे है जैसे। साधनि में हरि हरि भयो ऐसे॥
जैसे दिन मैय रैन समानी। गुरु प्रसादि समझे को ग्यानो॥
जैसे कुसम सुगंध बिसारी। ऐसे साध जोत हितकारी॥
जांको बूझ पड़ै सोही जाने। गुरिप्रसादि साईंदास बषाने॥
साधनि के संगि चित धरे विमल मोह भ्रम टार।
साईंदास ताको बिघन न लागही मुक्त होति तति काल॥

५७

जो साधनि मैय हर गुनि गावे। आपा त्यागे नीच[3] कहावे॥
जीविति मुक्त होयगो सोईं। साधि संगि मिल दुरमति षोईं॥
परिमपदार्थ तिस ही पायो। हरिभगतन सो जिन चितु लायो॥
प्रभु उतिरयो तासो चितु लायो। साध क्रपा हरि भजिन कमायो॥
भजिनि करति कछु दुष नि विआपे। हरि सेवा त्रय गुनि न संतापे॥
साईंदास साधि संगि हू ते। साधि क्रपा उधरे तनि हूं ते॥
सलोकु—ध्यानि धरो फुनि सिषर में तहा बसे सुष होय।
साईंदास अपिना आपु पछानाआ हीये निर्मल जन सोय॥

---

१. हरि और हरिजन में अभेद है। इसी तथ्य का उपमाओं द्वारा वर्णन है। पहली उपमा है—जल और जल की तरंग। कबीरदास ने भी इस उपमा का प्रयोग किया है। दूसरी उपमा है—दीपक और ज्योति की। तीसरी उपमा है—दूध और घृत की। चौथी उपमा है—रात और दिन की। पांचवीं उपमा है—कुसुम और सुगंध।
२. पै<पय, घिरत<घृत।
३. नीच=नम्र।

५८

धर्न उलिटि मन गगनि चढायो। भर्म मिर्ग तवि ही हत आयो॥
भूल गियो जो कछु था वकिता[1]। जोगि जुगंतर जोग सो जुगता॥
भइ की भीति सुर्त विसरानी। अनभय पुर को परी निशानी॥
चित्र रूपु कहन नहीं आवे[2]। जो मुष कहो कहा नहीं जावे॥
अविगत गति कछु लषी नि जावे। विसम होय सुष नाउं चिरावे॥
अतिभुति लील्हा नैन निहारी। साईंदास जवि मिले मुरारी॥

द्याल पुर्ष सुष देन को दुषि विसिरावन हार।
साईंदास तांकी सेवा लागीए और वाति चित टार॥

५९

दिआल पुर्ष की सेवा लागो। भजो गोपाल निसि वासर जागो॥
जागृति चोर मुसे नहिं घर कों। गुरु प्रसाद लहो हरि दरिको॥
जो कछु कहो सु हरि की बांनी। नाहीं ता मोंन भला है प्रानी॥
ठौढ राष चितु नाह डुलावो। राम जपति सहजे सुषु पावो॥
हरि की भक्त लेह चित धारी। वेद पुरानं सभ एही पुकारी॥
भक्त भाउ जोग सुष पायो। साईंदास जिस हरि गुनि गायो॥

सलोकु—हरि प्रसादि भ्रम उतारियो होवनिहारि पछान।
साईंदास साध संग्य सुषु पाइआ प्रेम भक्त चित आनि॥

६०

जो कछु कीयो सु हरि ही कीयो। जो सुषु दीयो सु हरिही दीयो॥
विन भगिवानि और को नाहीं। गुरि मिल समझि देष मनि माही॥
विनु रघुनाथ सूझति को नहीं। संमृति वेद सभ भाषि सुनाही॥
विनु रघुनंदनि कुंज विहारी। सूझति नाह जो सूषि दिषारी॥
विनु श्री क्रष्न मुक्त को पावे। रविसुति फासी तेउ बिरावे॥
विनु त्रिभवन नागिर सुषि आगिर। कौन दिषावे सुषि बिनु आगर॥
विनु धरिनी धरि कौन उबारे। संसा मनि का कौन उतारे॥
विनु मनिमोहनि को नहीं दाता। माति पिता वनिता सुति भ्राता॥

---

१. वकिता < वक्ता = वाचालता।

२. प्रभु के दर्शन से जो सुख मिला वह अवर्णनीय तथा अनिर्वचनीय था

विन जगिदीस कौनु जगि परे। भौजलि विषम जो पार उतरे ।।
विन गिरधारी को सुषदायक। ऐसा औरि न सूझति लायक ।।
विनु मुकंदि परिमानंदि स्वामी। विरिथा कोल है अंतिरजामी ।।
विनु कौलापति प्रान उधारन। ऐसा औरि नहीं दुषि टारन ।।
साईंदास तौ सरिनी आयो। गुरिप्रसादि जसु भाष सुनायो ।।
देषो नैन निहारं के चलिआ जाति जगवीरि।
साईंदास विलम छोड हरि सिमर ले मानो गुरि अरि पीरि ।।

६१

जगि चलिआ नैन लिवि लायो। विमल छाडि जसु हरि का गायो ।।
षिनि पलि जाति अविध तिहारी। घटि घटि जात मनि लेह वीचारी ।।
घड़ी घड़ी घड़ियाल बजावे। अविध घटित सठ समिझ न आवे ।।
आन अचानिक कालि गिरासी। उरि में डारि चलित ले फासी ।।
तवि पछुताउ रह्यो मनि माही। हरि का सिमरन कीनो नाहीं ।।
इहु पछतावा काम नि आवे। जोर न लागे नीर ढुलावे ।।
अवि तो तुमरे प्रान वसाई। काहे ना हरि सिमरआ भाई ।।
विनु हरि सिमरनि सुषु नहींकोई। मीन बिछरि जल विना न होई ।।
कलवतर[1]रविसुत[2]सिर परिधरियो। काटिअविध तिहारी तरिवरियो
छाडो विलम मनि लेह संवार। साईंदास जनि कहिआ पुकार ।।
सलोकु—नरिपति सुरपति सभ भजे भजिन कर्त लिव लाइ।
साईंदास जात पाति पूछे नहीं जो सिमरे सुष पाय ।।

६२

नरिपति वेद भाष भषि जांने। आसि रिदे हरि जी की आने ।।
कहा भया नरिपति जो हूयो। ताह कर्न हरि ही दीयो ।।
मनि माही बहु लेति वीचारी। मोह नरिपत कीना गिरधारी ।।
तिह ऊपरि जिनही ससताविन। जो दुष देत बहुति दुष पावन ।।
इह प्रजोग त्रास मनि धारे। डरिपति डरिपति राज संभारे ।।
तिह नरिपति कों बहु सुषि दिषायो। जिसको अपिना आपु जनायो ।।

---

१. कलवत्तर<करपत्र (आरा) मराठी (करवत)।
२. रविसुत=यमराज।

जो जो हरिजनि रिदे वसाई। जीवित मुक्त होति मेरे भाई ।।
साईदास आनंदि घटि जांके। हरि का नाम वस्यो घटि तांके ।।
सलोकु—देवनहारा एक है ताहू के गुनि गाय।
साईंदास पर्म मुक्त गति पाईए दुभदा देत मिटाइ ।।

६३

परालभित[1] जो कछू तिहारी। अनिवांछति है आविनहारी ।।
जो वांछतिं सो मिले ना आई। परालभत छनि मिलाई ।।
ठौडि राष चितु नाह डुलावो। जो कछु तुमरा है सो पावो ।।
हरि को जपो निसवासर धिआवो। परालभत ले ना उकिलावो[2] ।।
देवनहारि रह्यो भरिपूर। जाने निकिट अजाने दूर ।।
संसा छाड़ि भजो गोपाल। करिणामै जो सदा दिआल ।।
साईंदास हरि नामु ध्यावो। सुषिसागिर घटि माह बसावो ।।
अनेक राग श्रविनी सुनो नैन रूप समझाइ।
साईंदास उलिटि पड़ो जवि आत्मा परिमातम हो जाय ।।
श्रविन धरो सुनो हरि की बानी। लषी नि जाइ अकथ कहानी ।।
अनेक राग वजे मेरे भाई। मगिन होत मनि अतिअधिकाई ।।
ताल मृदंगि वीनि धुनकारी। अनिहदि शब्द होति अतिभारी ।।
सुन्न सविद की सुर्त सभारे। निरति करति गोविंद चितारे ।।
भगित भाउ रिदे माह बसाई। सहिजे मनि दुभिधा मिटि जाई ।।
नाचित निरत कर्त हरि केरी। काटि देत मनि भ्रम की जेरी ।।
उनिमनि माह सदा मगिन चित। जो गावित तौ आप सुनावित ।।
आपे बके सुनित फुन आपे। सर्वमाह जो रह्आ विआपे ।।
साईंदास विचार घरि आयो। उलिटि पड़ा जवि आप सुझायो ।।
जवि लगि रसीआ रस रह्यो होति व्याध को मूल।
सुषि विसरति दुष जागही परिसति अति असथूल ।।

---

१. परालभित<प्रारब्ध=भाग्य। यहां से भाग्य का वर्णन है। भाग्य से जो कुछ भी मिले उसे सहर्ष लेना चाहिए।
२. अकलावो<अकुलावो। आकुल=व्याकुल होना (नाम धातु)

६४

जवि लगि रसआ रस मे रसिआ। तबि लगि जांनो दुष मे फसिआ॥
जबि लगि मनु ना मोंन करावे। कहा भया जिह्वा ठहिरावे॥
जवि लगि मनु दहदिस भरिमाई। मोन कहा बहु मेरे भाई॥
मनि चंचल चतुराई करे। परि घरि मूसिन सो चितु धरे॥
मारित मगि तसकरि पंच भैया। तनि मनि माहि संताप जो दया॥
नगिर मांह कैसे ठहिराए। रहे सहिज जो रह णा पाए॥
साईंदास विकटि गति भाषे। गुरिकिरपा जनि विर्ला लाषे॥
सलोकु—सुनित वकत मुक्ते भए जिन कीनो परितीत।
साईंदास पारिब्रह्म अंतर वस्यो निर्मल होयो चीत॥

६५

सुनित नाम हरि बहु मुक्ताये। हितकरि जनि हरि के गुनि गाए॥
गोविंद नामु रिदे जिन लीना। तति काल प्रभ मुक्ता कीना॥
जांके रिदे बसे गोविंद। सदा बसे घटि परिमानंदि॥
प्रेम प्रीत जांके मनि आई। उज्जिल भयों मिटी तिमराई॥
मानो कुस्म मिल्यो जलधारा। निर्मल रूप भयो उजिआरा॥
तीनि ताप संताप चुकायो। ब्रह्म मिल्यो सुष आनंदि पायो॥
सकल माह हरि रूप दिषायों। मिट गयो दुष गुरि नामि दिढायो॥
सतिगुर चर्न रह्यो लपटाई। तिह प्रसादि भ्रमि मनि का जाई॥
साईंदास आनंद गलतानि। चूको तिन कों आविन जान॥
उरिध मति जनि त्याग के लेहो आदि पछान।
साईंदास वैरभाउ पाछे रह्यो निर्भो पदि लिव ठान॥

६६

ध्यानि धरो धरि हरि गुन गावो। विष्या सुर्त सकल विसरावो॥
गुनि गोविंद धरो चित माही। जठर अग्न ते जिन उबिराही॥
दग्ध होन तुम कों नहीं दीयो। पान-पाति[1] जो रष्या कीयो॥
रे सठि दसि मास वस्यो तूं ताही। ताह वसति हरि के गुनि गाही॥
भयो व्रतीत मास दस जविही। प्रगिटि भयो जगि भीतर तविही॥

---

१. पानपति<प्राणपति (ईश्वर)

दीओ विसारि रष्या जनि कीनी। और मत्त ततषिन चित लीनी।।
अपिना आप दीओ विसराई। कौन नीति ते उपिज्यो भाई।।
मं मं बचन रुदनि करि भाक्ष्यो। भूल्यो अंवृति विणु फल चाष्यो।।
रेजनि जोगत अपिनी कीआलोरो। साधि संगि मिल दुरमति तोरो।।
ताह बंसति फुनि ना चितु आनो। यहि गोइल मिथ्या करि जानो।।
जिउ बाजीगरि बाजी पाई। छल करि प्रभ इह बनत बनाई।।
अंभ सो अंभ मिलयो मेरे भाई। माटी सो माटी होइ जाई।।
माटी पविन अंभ ते साज्यो। तामे जोत सरूप विराज्यो।।
अंत माटी माटी होइ जाई। अंभ सो अंभ सहजे मिल जाई।।
पौन सो पौन मिलयो मेरे भाई। नर्क स्वर्ग मह को ना जाई।।
जो इह बांत पुकार सुनावे। जगित बसेरा करि ठहिरावे।।
जो कोकरिम करितूत तिह माही। मानि महति चतु दीनो ताही।।
सभ ते आपि नीच कर जांनो। रिदे भगिवान रुचित करि मानो।।
तांको नर्क स्वर्ग नहीं काम। जिस घटि पसरयो पूरण राम।।
जिन ने कहयो जु मै कछु कीयों। मान महति ताहू चितु दीयो।।
गुरि के बचिन सुनित जनि भाषे। अबिगत गत कछु वाही लाषे।।
अविगति गति गत सोई जाने। गुरि प्रसादि जो ब्रह्म पछाने।।
साईं दास हरि नाम धिआयो। गुरि के बचन मनि ना विसरायो।।

रवि सुति अरि जो देषते करिवति[1] जाने मीत।
साईंदास पलि पल छिन छिन अविध कों काटित सुन धरि चीति।।

६७

निस वासर जो जाति अवेही। पलि पलि छिनि छिन अविध घटेही।।
मनि मूर्ष कित स्वाद लुभाओ। पूर्न पुर्ष चित ते बिसरायो।।
कौनि हेति अति अंध अज्ञानी। जो इस्थर[2] सो दीयो भुलानी।।
जो अनित्त तासो चितु लायो। जो इस्थर चित ते बिसरायो।।
जानि बूझ किउ विषु को षायो। पतित उधारनि को बिसरायो।।
अंति न होई होति सहाई। माति पिता बनिता सुति भाई।।

---

१. करवति < करपत्र = आरा।
२. इस्थर = यहां इस्थर शब्द का अभिप्राय स्थिर है। उसमें 'इ' का 'आदि स्वरागम' हुआ है।

जवि उरि फासी रवि सुति डारे। मुगिदरि सेती सीसु प्रहारे।।
ताहि समे द्रगि नीरि ढुलावे। हाथ पछोड़े बहु पछुतावे।।
ताहि समे कछु नाह सहाई। साईंदास जबु हरि सुषिदाई।।
पूर्न पुर्ष निधान सुषि घटि घटि ताह निवास।
मनि रुचिकरि ता सेवए गुरि किरपा साईंदास।।

६८

जलि थल भीतिर रह्या समाई। अविगति गत कछु लषी नि जाई।।
पसु पंषी मे ताह निवासा। अस्थावर जंगम महं वासा।।
जो दीसे सो ताह सरूपा। गहिर गंभीरि जो सदा अनूपा।।
अनंति रूप कछु वरिन न जाई। जिन को जानो होति सहाई।।
बिना सहाय कहा कछु होई। साईंदास जपु हरि हरि सोई।।

सलोकु—सूरा सोई भाषीए सनिमुष झूझे जाय।
पीठि न देवे साईंदास हरि गुनि वान चलाइ।।

६९

सूरा सो सनिमुष जा लरे। सति गुरि शब्द षडग करि धरे।।
पंचि दूत का घाति करावे। निर्भौ नगरी माह बसावे।।
ग्यान ध्यान मे रह्या समाय। तिमरि अज्ञानि मिटै सुष पाइ।।
निज पदि कों जवि ध्यान लगावे। आप सकिल विसरावे।।
रवि प्रकास कीयो जवि हूंते। तिमर विनास भयो तवि हूंते।।
त्रयगुन मेटे ते अलसाना। चूकी गियो फरि आवन जाना।।
साईंदास अनिभै पुरि माही। सदा अनंदु त्रासु कछु नाही
बाजे बजित अनेक भांति सुर्त नर्त ठहराय।
साईंदास बिन देषे श्रविनी सुनो मुष ते भाष सुनाय।।

७०

बाजे बाजित भांति अनेका। सुर्त निर्त करि समझ विवेका।।
विनुपगि नाचै जिह्वा विनु बोले। नादि सुने श्रविन नहीं षोले[1]।।
विना ताल करताल बजावे। बिन देहा करि जोत दिषावे।।

---

१. यहां अनिभैपुरी (सहज समाधि) की अवस्था का वर्णन है। जहां नृत्य संगीत ध्वनि अनींन्द्रिय ज्ञान से प्राप्त है।

विना भानि[1] उजिआरा होवति। मनि की मैल सविद[2] गुरि धोवति ।।
आपि भआ जबि आपनिहारा। साईं दास तबि भ्रम मृग मारा ।।
महा विकटि अति वाटि है पगि ठहरावति नाह।
साईं दास इति विध पौहचि न पाईए विहंगम फासी लाह ।।

७१

महा विगट मार्ग मेरे भाई। फिसलति पगि फुनि धरियो नि जाई ।।
षगि ते मगि पगि धरिन न पाई। सुनित वकित गुर होत सहाई ।।
जौ तुमरी किरपा जनि पर होई। ताते पार पडो जनि सोई ।।
अंध कूप कछु नाह सुझाबत। सूझत नाह न कछू दिषावत ।।
होइ हैरान रह्यो थकताई। साईं दास हरिदास सहाई ।।
गुनि आगिर भगिवान है नागिर तांको नामु।
साईं दास नाम अनंत अनंति है सिमरो आठों जाम ।।

७२

गुनि आगिर भगिवान कहीजे। सिमरनि आठों जाम करीजे ।।
एकु पलु विलम नि करियो भाई। निसवासरि ताहू गुनि गाई ।।
विमल बुद्धि उजिआरा होइ। जाति पात दूसर नि कोई ।।
रामा पदि के मंगलि गाऊ[3]। जो गावो तौ सरिना आऊ ।।
आनि देव फल को है दायक। तांते मुक्त और नहीं लायक ।।
जो आनि देव किरपा जनि धारी। जो विरथाहरि होय बिचारी ।।
जवि किरपाल होवे जादोराय। तवि फल आन देव जनि पाय ।।
ताते एह भला मन आवे। राम नाम कित जात भुलावे ।।
नारायणि निर्भौ सुषदायक। साईं दास भजि लागो पायक ।।

सलोकु—मूर्ष मनि समझाविहो समझत नाही[4] काय।
साईं दास हरि प्रसाद सुष सहज मैं संसा चित ते लाह[4] ।।

---

१. भानि < भानु = सूर्य।
२. सबिद गुरि = शब्द ब्रह्म।
३. अनन्य भक्ति पर बल—ईश्वर ही मुक्ति का दाता और देव केवल फल दायक।
४. लाह = उतारना (पंजाबी शब्द)

७३

मूर्ष मनि तुझ कहं समिझाऊ। करि विबेक तुझ नैन दिषाऊ।।
जबि तै जनिम जगति ते पायो। माति गर्भ ते कहा लइआयो।।
कहा आपि कहा मोह दिषाई। जठिर माति ते जनिम्यो भाई।।
जिन ने धारि इहि वनित बनाई। गुनि अविगुन सभ नाह सुझाऊ।।
जनिनी अस्थानि पै प्रगिटायो। प्रथिमै पाछे जगि दिषलायो।।
वहुड बाल अवस्था त्यागी। भरि जोविन नारी अंगि लागी।।
तबि हरि तुम कों ना विसरायो। जो परालभित सो आन पहुंचायो।।
नाना भांति रक्ष्या तुझ करी। रिदे विसार चिति नाहै धरी।।
रे सठ ते एकु गुनि नाहीं मान्यो। रच्यौ औरि चित ते विसरान्यो।।
अनंति स्वाद रसना जवि पायो। हरि के गुनि गाविन बिसरायो।।
श्रविनी नाद सुन्यो जवि हीते। मंडिल ध्यानि चूको तवि ही ते।।
नैन जीवित जगित निहारच्यो। मातिपिता वनिता चित धारच्यो।।
जहां हरि भक्त तहां नहीं जावे। जहां ठगित गति तहां सिधावे।।
वह हरि गुन इहि तो गुनि कीने। मूर्ष सठ तै ब्रह्म न चीन्हे।।
जो आवित आवित जानो। साईं दास अवि उलिटि पछानो।।

नाना रंगिहो पसरच्यो जिन जान्यो तिनि जानि।
साईं दास जिन जानियो सुष पाइयो आनंदि में गलतानि।।

७४

कोई नागा वनि उठि धावें[1]। उनि वाही मैं अलिष लषावे।।
किनिहूं जटा बधाई सीस। उनि जानियो ऐसो जगिदीस।।
जोगी होके कान पडाए। उनि ऐसे हरि जानि लषाए।।
कोऊ अस्थावरि के है वासी। बाहू के मनि माह हुलासी।।
कोऊ वैरागी जनि भए। द्वादिस तिलक अंग मैं दए।।
कोऊ मुष ते बचिन न भाषे। मोन गहे हरि ऐसे लाषे।।
कोऊ ज्ञानि विज्ञान विचारे। कथा कीर्तन हरि ज्ञानि चितारे।।
कोऊ षटि शास्त्र वीचारी। जपे नामु श्री कृष्न मुरारी।।
जो कबुद्धि है त्यागन हारे। सो उधिरे लै ज्ञानि बीचारे।।

---

१. ईश्वर भक्ति अनेक रूपों में की जाती है।

अनेक भांत प्रभ रूपि पसारा। सम दिष्टी जिन नैन निहारा।।
साईं दास जिन सम करि जाना। तांका भ्रम उतिरयो मनि माना।।
सलोकु—तुमरी गति मैं क्या कहो मति थोड़ी चित अंधि।
भ्रमि चित तू करि आवरयो अति दीर्घ तिह संधि।।

७५

तुमरी गति मैं कहा वषानो। मति थोड़ी चितु कहनि न जानो।।
सेस नागि[1] कछु अंति ना पायो। शंकरि जोगि ध्यानि चितु लायो।।
पंडित वेद पडित थकिताने। नारिद वैन बजाय भुलाने।।
जम दग्नि परासर पतन कमायो। रिष धूमासरि जतन करायो।।
गौतम तरीआ प्रीत रषाए। व्यास अगस्त हरि के गुन गाए।।
सुकि नाना विध ज्ञानि बीचारी। अंतु ना पायो तिह वनिवारी।।
साईंदास अविगति करि जानो। गुरि प्रसादि चिंता उतिरानो।।
जो निर्भौ जनि मान के, साधे पंचो दूत।
निरिमलि हो निरमलि भए नरिपति सकल अविधूति।।

७६

जिन हरि जाना आप पछाना। आप पछान ताह सुष माना।
उलिटि विचार पड़ो जवि हीते। सुषि निधानि पायो तवि हीते।।
साधू सहज अलिसाना जाय। मनि की दुभदा सकल चुकाय।।
रूपि रेष हरि चिह्न समानो। भयो सोई जो दिष्ट परानो।।
सुषि सागिर माह समायो। परिम पदार्थ तिस ही पायो।।
प्रगिटि सुगंध बसे जगि माही। पर्म जोत सो सहजि मिलाही।।
साईं दास प्रभ घटि मैं पेक्षा[2]। तत्त सरूप अरूप अरेक्षा।।
मूल सम्हालो आपना, काहू जो कहा भइयो।
सांईं दास कौन रूप हो पसरयो, संसा सोगि गयों।।

---

१. तुलनीय रसखान—
सेस महेस गनेस दिनेस सुरेस हु जाहि निरंतर गावे।
जाहि अनादि अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावे।
नारद सेसु व्यास रटे पचि हारे तऊ पुनि पार न पावे।
२. प्रभु के दर्शन भीतर ही हुए— पर था वह निर्गुण।

७७

रक्त विंद ते उतिपति भयो। फुनि दस मास गर्भ में रह्यो॥
अस्त रोम तुचा फुनि नाडी। उनि सभ हूं करि देह सवारी॥
तांके नवि द्वार घरे बनाई[1]। दसिवा गुपत द्वार मेरे भाई॥
गुपत द्वारा सोस मंझारी। सुनि ले हो रम रहियो मुरारी॥
दोनों श्रवनी और सुनीजे। नासका गंध सुगंधे लीजे॥
दोनों नेत्र धरे बनाई। मुषि दुआरा सुनहो मेरे भाई॥
मूलि द्वारा अविर बीचारो। इंद्री द्वारा रिदे जनि धारो॥
अस्थन फुन रोम दो भए। होइ अतीत सोहंम पदि गए॥
नावा द्वार नभ पछानो। इहि फुन पौना को अस्थानौ॥
दसों द्वार परिसिद्ध बताई। नीके बोल कछु मिलन न पाई॥
साईं दास इहि करो विचारा। सो जाने जो जानन हारा॥
गुप्त द्वार को वाति सभ सुनि करि चित धरि लेय।
साईं दास संसा चूको हरि भजो रवि सुति त्रास नि देय॥

७८

जवि आत्म तहा जाइ समाया। सुर्त निर्त सभ यगि विसराया॥
अनिहदि सविद उठति जैंकारा। निस वासर अनिभै झुनकारा॥
देह सुर्त कछु रहनि न होय। ब्रह्म जोत सो जाय मिलोय॥
नाना भांत वजंत्र जु वाजे। ताल मृदंगि झाझरी गाजे॥
रह्यो विल्हाइ तहा जाय समाई। साईं दास कछु कहि न जाई॥
सलोकु—श्रविन द्वार की बात सभ, सुनिए जनि परिधान।
कथा कीर्त्तन श्रविनी सुनो पूर्ण पद सुरि ज्ञान॥

७९

श्रविन सुनो सुन हरि की बानो। कथा कीर्त्तन सुनो आनंद बानी॥
भाउ प्रीति हरि जस सुन जानो। कर्म करों फल नाहन मानो॥
प्रोति करो हरि हरि जस सुनही। गुर जनि बचिन रिदे पुनि धरिही॥
भला वुरा फुन कर्म विचारा। श्रविन धारि जसि सुनित जैकारा॥

---

१. देह के नवद्वारों का वर्णन। दसवें द्वार मे प्रभु हैं, इसे ब्रह्मरंध्र कहा है। इसे ही गुप्त द्वार कहा है।

साईंदास श्रवनन सुनि नीके। हरि जसु सुनो सुष चाहो जीके ।।
सलोकु–नैन वाति सभ भाषी ही, प्रेम लाहा सुनि लेह।
साईंदास दरिसन हरि का सभ माह है सुनि चित अविर न देह।।

८०

नैन पसारि रूप हरि देषा। नैनन माह थके हरि लेषा।।
नैन निर्ष चले मगि माही। वस्तु निर्ष जनि नैन लुभाही।।
नैन निर्ष सकल विधि सूझे। वेद पढ़ति नैननि हर बूझे।।
नैन निर्ष भला बुरा पछाने। नैन निर्ष हरि को जसु जाने।।
साईंदास नैननि की बांनी। को जनि जाने ब्रह्म गियानी।।
सलोकु–गुप्त श्रवनि नैनन कहे नासिका कहित विषआन।
साईंदास रे नर सुनि मन में धरो प्रेम प्रीति लेहो ठान।।

८१

गंध सुगंध लेति ही रहे। तांका इहि विउहार जु इहे।।
लेत सुगंध हर्ष बहु माने। आतम सुष परिसंन्न पछाने।।
मानो विरिछ[1]मिलयो जलि धारा। हरिआ होत संगि ले परिवारा।।
मानो कुस्म षिरचो मेरे भाई। हरिष वदिन तिन दीयो उघिराई।।
गंध लेत बहु सुकिच करायो। और लेति तांपरि ठहिरायो।।
कहा भआ जो ऐसा कीयो। अति सुगंध गंध तै लीयो।।
साईंदास तै भाष सुनायो। प्रेम भाउ कछु नाह दुरायो।।
सलोकु–सति गुरि नाम मंत्र दीयो[2], कीनो तिमर विनास।
साईंदास भौ चूका अनिभै भय़ो, होयो सहिज प्रकास ।।

८२

सति गुरि जबिही मंत्र द्रिडायो। सकिली मनि को भीत चुकायो।।
जविही भीत चुकी मेरे भाई। दुभदा सहिजे दीयो हराई।।
जवि ही दुभदा मिटि गई मनि ते। पांच दूत भागे तब तनि ते।।
गए दूत नगर सुषु पायो। निभौं होय सभ लोकु बसायो।।
गृह गृह माही मंगल गायो। मगिन भैया सुष सहज समायो।।

---

१. विरिच्छ<वृक्ष।
२. साईंदास जी की मुक्ति—गुरुमंत्र द्वारा।

मुषि द्वारे हरि के गुनि गावे। हरि रस माता सदा झुझावे॥
जो बोले सो अंवृत वांनी। मुष द्वारे हरि नामु विषानी॥
हरि का नामु सदा मुष भाषो। प्रेम पिआला अंमृति चाषो॥
असथन भविन ही रोम द्वारे। सोहं शबिद सदा उजिआरे॥
नाभि दुआर में पविना रहे। सदा सदा हरि के गुन गहे॥
मुषि भाषित जनि मुक्ता होवे। साईंदास सुष सागिर सोवे॥
जवि इंद्री द्वार मै ठहिरते, काम भोगि सुष मान।
साईंदास तिरीआ अतर सभोगही बहु विध हो गलतान॥

८३

जवि इंद्री मनि मथन करावे। होइ व्याकल सुध विसरावे॥
मदि माता परि-धर्न[1] गिराई। सूझति माति पिता नहीं भाई॥
गुर जनि वेद सिमृति विसरायो। मतिवारा मदि दिष्टी आयो॥
नैनन माह भयो अंधआरा। भूलत विसिर जनि हारा॥
प्रथिमे वचन सो दीयो विसराई। जवि मतिवारा होय विषु षाई॥
हरि का भजनु तविही भुलानो। दारा सो चितु वहु विध मानो॥
साईंदास हरि दीयों तजाई। रे सठि तै कछु समझ नि पाई॥
लो०—मूल द्वारे आइयो सहज भयो मन माह।
साईंदास जोगि ध्यान जनि उलिटि परियो मनि माह॥

८४

सहिजे मूल द्वारा सरिही। जो सरिही दुरगंध निकरिही॥
जो कछु सहिजि माह होइ भाई। सहिजे सहज सहजि बनि आई॥
सहिज समुद्रि ज्ञानि कहीजे। गुरि परिसाद राम रस पीजे॥
एते गुन हरि ताह जो दीए। तांको कहा विसारो हीए॥
निसवासरि तांको चितु दीजै। हरि सिमरन आलस नहीं कीजे॥
कनिक कामिनी मैं उरिझायो। मनिमथ[2] सो हेत बढ़ायो॥
मिथ्या रूप करि निहिचे जांनो। साच कहो करि मनि मैं आनो॥

---

१. परिधर्न=पर स्त्री।
२. मनिमथ<मन्मथ=कामदेव (स्वर भक्ति)

आठ एक घरि ताक चडावो। दसिवा द्वार कपाट षुल्हावो ।।
विना नैन गुर सिष मनि जीजै। गुरि प्रसादि आलस नहीं कीजै ।।
जो गुरि मार्ग नाह दिषाए। तौ लौ बात कहा सुध पाए ।।
जवि लगि दीपक करि नहीं होवे। तवि लगि वस्तु अगोचर षोवे ।।
गुर मंतर दीपक करि जानो[1]। बांको करि लै राहु पछानो ।।
जो गति आपनी कीआ लोडो। साईं दास तब भ्रम मृग मोडो ।।
जवि लग मनि सोधे नहीं, तबि लगि भ्रम करि जान ।।
साईं दास मृग पसु जो वनि मैं फिरै, चडति नहीं निर्वान ।।

८५

जवि लगि मन सोझी नहीं पावे। तवि लगि मनि दह दिस भरमावे ।।
जवि लग सांध संग नहीं करे। तवि लग भ्रमता भ्रमता मरे ।।
जवि लगि हरि गुन नाहीं गावे। तवि लग मुक्त न कविहूं पावे ।।
जवि लग आत्म चीन्हे नाहीं। तवि लगि धृग जीविनि जगि माही ।।
जवि लगि तत्त नि रिदे वसावे। तवि लग मुघगि महादुषि पावे ।।
जवि ते तत्त सकल घटि जानो। साईं दास प्रभु अपुना मानो ।।
सलोकु—मूर्ष मनि अज्ञान तूं, हरि सिमरन चित धार।
साईं दास चडिते पदि निर्वानि मैं, प्रेम आदि वीचार ।।

८६

रे सठि मनि किउ समझ नि आवे। कहा जनिम तूं वादि गंवावे ।।
काहे मदि मतिवारा हूयो। विष्या फल मैं पच पच मूयो ।।
कहा हाथ कछु तुमरे आयो। जो हरि नामि रिदे विसरायो ।।
कहा भया विक्ष्या उरि भायो। कहा भया जो मान बधायो ।।
कहा भैया सिर जटा बधाई। कहा भआ जो मूंडि मुडाई ।।
कहा भयो मिरगान उढायो। कहा भया वनि षंड सिधायो ।।
कहा भआ मुष वेद बतायो। कहा भया जो जोग छनायो ।।
कहा भआ जो कान छिदायो। कहा भआ वाभूति चडायो ।।
कहा भयों प्रथिवीपति भयो। जु हरि को नाम नि मनि में लियो ।।
साईं दास सोई परिवान। गुरि का सविद घटि लये पछान ।।

---

१. गुरुमंत्र को दीपक की उपमा दी है।

रे मन हरि भजि लीजिए, तजीए मान गुमान।
साईदास प्रेम भावि सुष पाईए होइ न कविहूं हान॥

८७

हरि का नामु सदा चित धारो। गुनावादि हरि नाह विसारो॥
सुष सागिर हरि नामु ध्यावो। पर्म मुक्त गति तवि ही पावों॥
नामि निधान सदा सुषिदाई। रे जनि हरि का नामु सहाई॥
हरि प्रसादि सुष होवे तनि को। कलिपना मूल न व्यापे मनि को॥
अनिहदि नामु निधानि विहारी। सुषि सागिरि हरि हिरदे धारी॥
कौलापति दुषि नासन नामा। घटि घटि माह रह्यो विसरामा॥
साईं दास गोविंद गुनि गावो। प्रेम भाउ चित माह वसावो॥
मनिमथ जविही नाथयो, सहिज भयो मनि माह।
साईं दास तीन ताप संतापं सभ चूके दुषि कछु नाह॥

८८

मनिमथि[1] जविही नैन निहारे। तीन ताप संताप निवारे॥
निर्ष रूप सहज मनि मानो। हर्ष माह सुष आनंदि जानो॥
प्रानि जीवि गोवर्धन धारी। पलि पलि छिनि छिनि में बलिहारी॥
सोहं सविद सदा धुन करति हो। अलिवरि ज्युं फुन[2] लुभद पडति हो॥
कुसम रूप[3] जवि नैन करति हो। हिरदे और न आन धरत हो॥
तांको धरि मस्तक गुर देवा। ताते प्रगिट भई जगि सेवा॥
सुरि नरि रिष मुन सुष जनि पायो। तांति काल दर्सन को आयो॥
दर्सन निर्ष भयों हैराना। अश्चर्ज[4] बाति नहीं जाति विषाना[5]॥
अगिम अगोचरि भाष सुनायो। जिन बूझआ तिन ही सुष पायो॥

---

१. मनिमथ<मन्मथ=यहां श्रीकृष्ण भगवान् के लिए आया है। श्रीमद्भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण को काम का अवतार माना है।

२. फुन—वैसे इस ग्रन्थ में फुन शब्द पुनः के लिए आया है। पर यहां फुन अर्थ फुल्ल=पुष्प से है। सम्भावना है कि लिपिकार फुल्ल के स्थान पर 'फुन' लिख गया है।

३. कुसमरूप—यह शब्द भी भगवान् श्रीकृष्ण के लिए आया है।

४. अश्चर्ज<आश्चर्य।

५. विषाना<व्याख्यान>बखान।

षेचरी[1] पद जांके मनि बसे। ज्ञानि पदार्थ षिन मैं नसे॥
आप कहे कहा सुने न भाई। षेचरी पदि सो रह्यो विल्हाई॥
जवि षेचरी पदि मनि माही लागा। ज्ञानि पदार्थ तिन ते भागा॥
समझति नाहीं क्या समझावे। साईं दास तत्त सविद षिल्हावे॥

हरिजनि[2] सोई भाषिए जिह घटि कपिट नि होय।
साईं दास जिह घटि कपिट न होवंही सदा सुषी नरि सोय॥

८९

हरि जनि के मनि सोई भावे। आपा तिआगे नीच[3] कहावे॥
नीच कहावे तौ नौनिध पावे। जौ निध पावे सुष सहिज मिलावे॥
सहिज मिलानो जवि ही भाई। नगिरी तसकरि[4] मूल नि पाई॥
तसकरि तबिही त्यागे जाई। सतिगुर मिल जवि बूझ बुझाई॥
अंतिर सोध लीआ जंवि तवि ही। अति गंभीर राता जनि जबि ही॥
संसा सोक व्यापे कछु नाहीं। वहु निध पाई सुष सहज मिलाही॥
संसा सोग नि कबि हु पावे। जबि ते दुभदा मनि मिट जावे॥
दुभिता चूकत है फुन वांको। हरि संगि प्रीत लगी है जांकी॥
हरि सो प्रीत अधक जवि लाई। सभ सो अपिनी जोत दिषाई॥
जवि ही जोति मिले संग सभ ही। उलिटि पडो हरि होयो तबि ही॥
साईं दास जिस आप बुलायो। सुषि आनंदि अनंदि समायो॥

लो०—श्रविनी नाम निधान हरि, जिह सिमरनि गति होइ[5]।
साईं दास विना नाम भगिवांन के और नहीं है कोइ॥

९०

सिमरो नामुनिधानि विहारी। कौलापति त्रिभवनि दातारी[6]॥

---

१. खेचरीपद=अविनाशीपद—जहां खे शून्य में रमण करने वाले मुक्ति शून्य में वास का ही नाम है। वहां ज्ञान की आवश्यकता नहीं।
२. 'हरिजन' (प्रभु का भक्त) की परिभाषा उसका लक्षण दिया है।
३. नीच=नम्र।
४. तसकरि<तस्कर=चोर—काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि चोर हैं।
५. प्रभु स्मरण से ही गति (मुक्ति) मिल सकती है।
६. **'दातारा'** शब्द यहां 'दाता' के अर्थ में आया है। 'दाता' √दा धातु से 'ता' कर्तृवाचक प्रत्यय (तृच्) से बना है। पजाबी में इस तृच् कर्तृवाचक प्रत्यय के लिए 'आरी' का प्रयोग मिलता है जैसे लिखारी (लेखक)।

पूरन नामु सुष देवन हारा। सकल सरूप ताहूं सिर भारा।।
आपि एक अनेक दिषायो। जिन समझियो तिन आप लषायो।।
अपिना आपि आप जिन लाख्यो। हरि रस अमृत निज परिचाख्यो।।
हरि रस अमृत जिनही पीआ। तांको सति गुर क्रपा क॰ दीया।।
सतिगुर किरपा ताहू धारे। रतन ज्ञानि जिन लीया विचारे।।
जांके घटि मेय भयो उजिआरा। सो जनि प्रेम सो सदा षुमारा।।
उजिआरा घटि ताहूं हूआ। जो नरि जवि ते जीवित मूआ[1]।।
जीवित मूआ[2] सोई जानु। जिन ने मारा अपुना मानु।।
अपिना मनूआ जिन ने मारा। सति गुरि मंत्रु रिदे विचारा।।
साईंदास सहज घरि मांही। सिमरो हरि संताप मिटाहीं।।

कुसम रूप सुष सहजि मे निर्षयो रूप अचंभ।
सांईंदास नैंन अंतिर निरषयो मानिस जनम दुर्लभ।।

६१

मानिस जनिम दुरलंभ जो पायो। विन हर सिमरन वादि गवायो।।
जवि लग कुसम रहित संगि वेला। तवि लगि होता रूप सुहेला।।
वेल सो तोड डार जवि दीआ। औरि रूप निर्षंत छिन लीआ[3]।।
कुमलाना फिरि काम न आयो। डारि दीयों धरि राष मिलायो।।
तैसो रूपु मानस को भाई। पुंन्न कीए तै देहरी पाई।।
इसि देहरी को सुर नरि ध्यावे। जतिन करै तो भी नहीं पावे।।
इहि प्रजोग हो जतन करावे। देह पाई तै भगित कमावे।।
रे सठि तै कछु मत्त[4] नि आवे। आवर दा सभ वादि गवावे।।
सो समझे सो उलिटि पडीजे। साध संग मिल हरि जसु कीजे।।
एहि समा फिर हाथ नि आवे। आलस करि करि जनमु गंवावे।।
भजि मनि राम नाम सर्नाई। तिह प्रसादि दुष त्रासु ना कोई।।
सिंमृति वेद पुराण सुनावे। समझि देष गुरि भाष सुनावे।।

---

१. जीवित मूआ=जीते जी मरना साधक का लक्षण है।
२. यहां जीवित मूआ की परिभाषा दी गई है।
३. नश्वरता में कुसुम को उपमान चुना है।
४. मत्त < मति।

समझ देष मनि मैं जो कह्यो। तांते सत्त कछु अविर ना लह्यो ।।
उमिग उमिग जसिहरि का गावो। दुभदा मनि ते सकिल मिटावो ।।
जवि ते दुभधा मनि मिटि जाई। सहिज बैकुंठ सदा सुषि पाई ।।
साईंदास सिमरण हरिकारी[1]। और तिआगि हरि सर्न तिहारी ।।

सलोकु–प्रथिवीपति जवि होइयो कहा भयो मेरे मीत।
साईंदास जवि लगि राम ना जानयों कसो निर्मल चीति ।।

९२

कहा भया प्रथिवीपति भयो। जवि लगि राम नाम नहीं लयो ।।
सकिली प्रथिवी भई दुहाई। कहा भआ कहु मेरे भाई ।।
सकिल जगित ने सीसु निवायो। महाराज करि नामु बुलायो ।।
भांति भांति के महल उसारे। हाथी घोरे बहु विस्तारे ।।
सैना अधिक लै संगि फिराई। कनिक कामनी देष लुभाई ।।
अंति समै कछु संगि न जाई। माति पिता वनिता सुति भाई ।।
जवि रविसुति ले फांसी डारे। मुगदरि सेती सीसु प्रहारे ।।
रुदनु करे करि हाथ पछोरे। हा हा कर्त चलित नहीं जोरे ।।
तज ऐ कहा रहिआ सभ पाछे। संगि नि चलिति बिना गुन आछे ।।
बिनु भगिवान सकल विध वादि। साईंदास गोविंद करि याद ।।

सलोकु–निविली कर्म कमायो कहा भयो मेरे वीरि।
साईंदास जवि लगि मनि सोधे नहीं चंचल चपल गंभीरि ।।

९३

निविली कर्म कहा भयो करियो। मानि गुमानि रिदे मैं दीयो ।।
आपस को करि साध कहायो। हरि का नामु ना रिदे लिआयो ।।
जगति माह पसरी प्रभताई। महा कठन वहु जतन कमाई ।।
अंतिर बाहर आने धरी। कठन तपस्या साधन करी ।।
बाहरि अंतिर माही डारे। निवली करम कर ततिकारे ।।
इहि विध कीए मुक्त नहीं होवे। जवि लगि दुभदा मनि नहीं षोवे ।।
विन भगिवान सकिल विध वादि। साईंदास गोविंद करि यादि ।।

---

१. हरिकारी=हरि ब्रह्म (ईश्वर) बनाने वाला।

सलोकु–मूंड मुडाय कहा भयो जवि लगि मनि न मुंडाय।
साईंदास मनि मूंडे मुंड मुडीए इसिविध मूंड मुंडाय[1]॥

९४

मूंड मुडाय कहा जु भयोही। जवि ते मनि न करोध गयोही॥
मनि नहीं मूंड मुडायो। भेष बनाइ जगति दिषिलायो॥
मूंडे मूंडे कहा कछु नाहीं। मनि मूंडे मूंड सहज मुंडाही॥
वैरागी होवनि उठि धायो। मानो मृगि वनवासा पायो॥
बनि मैं मिर्ग रहति कछु थोरे। कहा जाति वनि दौरे वौरे॥
विनु भगिवान सकल विध वाद। साईंदास गोविंद करि याद॥

सलोकु—कान पडाय कहा भयो सिंही उर न समाय।
षिथ उडाई कपट की जुगत न जोगि कमाय॥

९५

कान पडाए दर्सन करियो। मनि नाहीं चीन्हे परियो॥
नाथ नाथ मुष भाष सुनायो। अंताकर्न नि हेत वधायो॥
भेष धरचो फुन कर्म विसारचो। नाथ नाथ फुन नाम चितारचो[2]॥
मनि चाहै कछु औरे करे। परि घरि मूसन[3] सों चित धरै॥
अनाहदि सविद न नादि बजायो। हीये मंत्र गुर नाह सुनायो॥
षिथा क्षमा नि मनि पहिराई। कानि पडाय कहा भयो भाई॥
पत्तर सहिज विचार नि कीनो। डंडा हाथ ज्ञानि नहीं लीनो॥
भाउ वभूति अंग न लगाई। गुटिका पौन समाधि न लाई॥
पंषिडी कला वबेक ना कीयों। मुकंद[4] परस सुष सहिजे दीयो॥

---

१. **कबीर से मिलते जुलते विचार—**
केसन कहा बिगारिया जो मूंडे बार बार।
मन को कहां नहीं मूडिये जहां भरया विषय विकार॥

२. पाखंडी साधुओं की यहां निन्दा की गई है। वे कान फड़वाते हैं। मन का वश नहीं करते। साधुओं का भेस धारण करते हैं। मुंह से नाथ नाथ कहते हैं। किन्तु मन में कुछ और ही सोचते रहते हैं। दूसरे घर चोरी करने की बात सोचते रहते हैं।

३. मूसन<मुष्णाति=चुराना।

४. मुकंद=श्रीकृष्ण—मुकंददास साईंदास जी के गुरु।

सोहं पदि की वाति जु पाई। उलिटि विचारयों आप सुझाई ॥
विन भगिवानि सकल विधि वादि। साईंदास करि गोविंद यादि ॥
सलोकु–केसि बधाए सीसि पर मनि ना बढ़ाई प्रीति।
कपिटि भक्त मनि मैं धरी धरयो नि हरि सो चीति ॥

९६

लिवि न लगाई केश बधाए। उभी भुजा करि जगि दिषलाए ॥
मोंन गहे मुष वचन न भाषी। करि पषंड अंन्न नाहीं चाषी ॥
दधि ले अहार फलाहर करिही। संकरि रूप परितक्ष जो धरिही ॥
रूप धारि जगि कों वस आने। मूर्ष जगि क्या उत्तर जाने ॥
निर्ष रूप हरि सकल लुभाए। बाकी मनि की वाति न पाए ॥
मुक्त न होत कपिट मन कीये। जवि लगि साच न धरया होये ॥
विन भगिवान सकल विधि वादि। साईंदास करि गोविंद यादि ॥
सलोकु–अगिम निगम की बात सभ जान करो बीचार।
साईंदास मन में क्रोध नि राषीए मुक्त होत ततिकाल ॥

९७

अगिम निगम की बात वीचारो। करि बीचार रिदे नहीं धारो ॥
मुषि भाषे मनि ना ठहिरावे। वेदि बके वकि रिदे न लिआवे ॥
चतुर्परबीन आपस कों जाने। दूसरों को सरि आप नि माने ॥
कहा जो हम सरि कौन कहावे। मानि गुमान रिदे में ल्यावे ॥
जगि महि हमसर कौन सदावे। वेद पुरान सभ भाष सुनावे ॥
मानि महति मैं भइयों गलताना। रिदे विषे धरि मान गुमाना ॥
पंडति नामु कहाविन लागो। मानि महित के घरि अन्नरागो ॥
सूपम पडै कहै जग माही। अविगतिगत कछु कही नि जाही ॥
वेदि पडित ही भर्म भुलाही। निगिम वाति कछु रिदे वसीही ॥
वेदि कहित हरि भजन करीजे। तनि मनि अर्थ गोविंद के दीजै ॥
सर्व माह भगिवान विराजे। पसि विहंग मैं आप समाजे ॥
इहि विध तौ मनि माह न आने। आपस कों उत्तम करि जांने ॥
विनि भगिवान सकल विध वादि। साईंदास गोविंद करि यादि ॥

सलोकु–जती[1] नामु जगि मैं कहे इंद्री वस करि नाह।
सांईदास रूप कामिनी देष के आत्म को भरिमाह ॥

९८

कामनी रूपि जो निर्ष लुभाही। मिथ्या नाम सो जती कहाही ॥
मान महति जो वस नही आने। नामु जती मुषि झूठ वषाने ॥
द्रिढ करि राषे नहीं इंद्री तांई। कौन जुगत ते जती कहाही ॥
ध्रिग एह जनिमु विना हर वांनी। जवि लग अंध न होता ज्ञानो ॥
करि विवेक इंद्री वस करिही। गुरि का सबिदु षडुगु[2] ले लरिही ॥
विना सविद जो सती कहावे। जो झूठी मुष बात बतावे ॥
बिना भगिवान सकल विध वादि। साईंदास गोविंद करि यादि ॥

सलोकु–सुनिहो साधो प्रीत करि अंतर गति लिव लाय।
सांईदास प्रेम प्रवाह सदा वहे वहुविध नीके नाय ॥

९९

प्रेम प्रवाह वहे घटि मही। यामै भेदु भेद कछु नाही ॥
समझि विचारि रिदे जो करिही। गुरि का सविद ले पंचन लरिही ॥
अनिभै पदि सो रह्यो मिलाय। गुरि प्रसादि सदा गुनि गाय ॥
गुनि आगिर भगिवानि नहारे। साध संगि मिल सदा षुमारे ॥
नैननि माह षुमार सदाही। बिना षुमारी कविहू नाही ॥
नाम रता मतिवारा होय। बिन मदि पीते सुध मति षोय ॥
हरिरस माता जविही भयो। अनिरस तबि ही ते तजि दयों ॥
हरि रस माता और नि जांने। भाषे कहा जु नाम अघाने ॥
नाम अघाने भूष नि लागे। नाम अघाने दुभिदा तिआगे ॥
नामि रिदे जांके मनि बसे। सहिज सुमंडिल रसि मै रसे ॥
सांईदास सुष सागर माही। सदा सदा सुष सहिज समाही ॥

सलोकु–जो जो सरिनी साध जनि करिते तिआगि सभ माहि।
सांईदास जगि भीतिर सोभा मिले दरिगा होय परिवानु ॥

---

१. यति > जती यहां इसी जती की व्याख्या की है।
२. षडुगु = खड्ग = तलवार।

१००

सुनिहो साधो बात वीचारो। तसिकरि पंचा को परिहारो ।।
ब्रह्मि अग्नि मनि माह जरावो । दुभिदा मनि ते सकिल चुकावो ।।
आपि सहिज मिल आप लिषावहु । धर्न अकास आप मह लियावहु ।।
धरिनी को जलु अकासे धायो। सोहं पदि मै निज चितु लायो[1] ।।
संसा सोक सकल मिटाई। साधि संगि जवि होवे भाई ।।
बिन साधि संगि ज्ञानि नही पावे। बिन गुरि कैसे बूझ बुझावे ।।
विधि अंकर तविही प्रगिटाइयो। साध संगि सहिजे ही पायो ।।
जतिन कीए कछु होवति नाही। तटि तोर्थ चौसठ भरिमाही ।।
वीज बोय फल ऐसा कीजै। विना बीज फलु कैसा लीजै ।।
जौ लौ बीज न धरिनि वीजाई। कैसे फलि विनु बीज उपिजाई ।।
वीज बोइ फलु लीना भाई। विना बीज फलु ना उपिजाई ।।
ऐसे विध अंकरि की वांनी। विना अंकर क्या ब्रह्म पछानी ।।
ब्रह्म पछाना तवि ही जाई। ज्ञानि आंच लागे मेरे भाई ।।
ज्ञानी अंचि कैसे करि लागे। सुभ लगि मति अज्ञान तिआगे ।।
अगियान मति कैसे तजि दीजै। इकि नीके विचार करीजे ।।
भली भांति सुनिहो चितु लाई। बिना बीजि फल ना उपजाई ।।
कथा कीर्तन श्रविन सुनि धावहु । गृहि कुटंवि कार्ज विसरावहु ।।
दैआ धारि सेवा चित कीजे। मिहिनित करि काहू कछु दीजे ।।
हरि जनि वासु जहा सुनि पाई। विलम नि करीयो ततिषिन जाई[2] ।।
जहा साध मिल ज्ञानि विचारे। नाना विधि करि वाति उचारे ।।
श्रविनि धारि वाति सुनि लीजै। हरि रस रसना के सुष पीजे ।।
जो जो कहो मनि ठहिराई। समिझ विचार रिदे मै आई ।।
जवि सुगंध सभि हूं मै आई। भूल्यो आनि सुगंध प्रगिटाई ।।
ऐसे हरिजनि बचनि कहित है। जगित माहि फुनि कोउ लहित है ।।
जवि ते ज्ञान रिदे वसायो। अनेक वीचारि रिदे मै आयो ।।
सभि विधि को जवि जानन लागा। मिटि गियो तिमर भांन जवि जागा

---

१. यहां योग की युक्तियों का कूटात्मक वर्णन है ।
२. यहां हरिकथा और हरिजन की सेवा के महत्त्व का वर्णन किया है ।

रहिता रहिता सभ ते रहियो। गहिता गहिता जवि हरि को गहयो
हरि जी उलिटि दिषायो आप। भ्रमि तोरयो गुनि आगिर जाप ।।
पंचि दूत तवि बस करि लीने। अबुद्धि अज्ञान तिमर दूर कीने ।।
बिना ज्ञानि कछु करिन न पावे। थकित होय चरिनी लपिटावे ।।
सूरा होय कायां गडि जीते। साधि संगि मिल वस गति कीते ।।
पायो ब्रह्म लष गति भाई। उनिमनी माह रहियो समाई ।।
अपिना आपु जो दीयो विसारी। सहिज समाध जो लषे मुरारी ।।
सांईदास जननि सो जाने। गुरमुषु लषे लष ब्रह्म पछाने ।।
दो०—जानि बूझ बूझे सकल कहि जो कहा नि जाइ।
सांईदास नैन विसम रसना थकित पगि हारे अलिसाय ।।

१०१

जानो कैसे भाष सुनावो। कहो तवी जो कहिना पावो ।।
जिहि नैनन करि रूप निहारा। चिहनि चक्र सभ घटि मै धारा ।।
रूप रेष जो कछु सो भाषे। अविगति गति बहु वाही लाषे ।।
सो तो नैन रहे विसमाय। अश्चर्जही कछु कहया नि जाय ।।
अदिभुति वाति निरिष विसमाय। इहि प्रजोग विसमाद समाय ।।
जो नैननि विसमा पर होहै। नैन निर्ष रसना जो कहियो है ।।
रसना थक्त भई अधिकाई। कही नि जाय प्रभ की प्रभिताई ।।
मंडिल मगिन भयौ नही भाषे। अंति समे विधि रसना लाषे ।।
नैनि निर्ष रसना उचिरावे। विन रसना कहा भाष सुनावे ।।
जविही नैन रहे अलिसाई। पगि थकत जो रहआ उरिझाई ।।
रसना कहा जो भाष सुनाई। उनि को कछु पलु ना विसराई ।।
निश्चल घरि जवि वासा पायो। आविन जान सकलि विसिराउो ।।
निर्भौं नगिरी मै पायो वासा। चूक गियो रवि सुति को त्रासा ।।
मगिन भयो निर्भे पुर माही। परिस जोति मंडल अलिसाही ।।
सहिजिसुमंडिल जाय अलिसाना। भरिम चूको मिटयो आविन जाना
बसे तहा अनिभै पुर माही। मनि मै त्रास त्रास को नाही ।।
त्रय गुनि ते जो भआ निआरा[1]। अनिभै परस्यो भयो उजिआरा ।।

---

१. तीन गुणों से रहित होने पर ही मुक्ति। गीता में श्रीकृष्णजी ने भी यही कहा है—'निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन' २।४५।

अभै किंडरी को जु वजावहु। प्रेम भाव फिर आप जसु गावहु ।।
मतिवारा सुध वुध नही काई। कहा भरिमु जवि आपि दिषाई ।।
निर्ष आप सकिल भ्रमु त्यागे। सुषि मंडलि आनंदि मै जागे ।।
हर्ष माह जनि आनंद पायो। निजि घरि मै जवि जाय समायो ।।
रहियो समाइ सहिज घरि माही। सहिज समाध सदा मुक्ताही ।।
साईं दास ईसरि जो जांने। गुरि प्रतीति निहिचे मनि आने ।।
दो०—तरिवरि सो फलु परिजयो तरिवरि जाइ समाय।
शविद आतिम परिकासीए आत्म शविद मिलाय ।।

१०२

तरिवरि वीजि मै जाइ समाया। तरिवरि सो फुन फलु उपिजाया ।।
अज्ञानि तजे सो रहे मिलाय। तत्त ज्ञान सो रहे समाय ।।
रैन दिनस एक करि जाने। अरिस परिस जे हित करि माने ।।
जैसे शिवि शक्त मिल रहे। तां मै अंतिरि कौना कहे ।।
ज्ञानि विज्ञान एक घरि माही। दीपक जोति वसे सभ माही ।।
राम रमियो ऐसे मेरे भाई। सभ मै अपुनी जोति दिषाई ।।
कहा ज्ञानि प्रकास भयो है। वही निकटि निकटि करि गहियो है ।।
समिता उपिज रही घटि तांको। निर्ष आपि समिझयो हरि जांको ।।
ताहू गुरि मिल अलष लषायो। सांईदास सहिज घरि आयो ।।
दो०—अटि पटी वाति अपारि है अटि पटि होवे जान।
साईं दास मतिवारा मुष जो रहे विन निर्षे परिवान ।।

१०३

अटिपटी वाति अटि पटी होई[1]। इसि अटि पटी को बूझे कोई ।।
नगिर वावरा लोकु सुजान। कारजि करे सहज सुष मान ।।
कविहूं नगिरी दिष्टि न परिही। कविहूं तरिवरि जिउ करि फरिही ।।
देष रूप रहियो उरिझाइ। विन पगि पहुंचे सो पहुंचाई ।।
जो जा बसे फुनि निकिसे नाही। वाविरा होत रहित सुध नाहीं ।।
आविन जाविन ते वहु रहे। निरिभौ नगिरी निज घरि अहे ।।

---

१. कूटात्मक बातें यहां कही गई हैं। यौगिक प्रक्रिया को बताने के लिए इस प्रकार कूट बातें सभी संत कवियो ने कही है।

मनि औरे रसना ठहिरानी। निरिषति बिना नैनिन हरि वानी॥
कोटि सुन्न नगर अदिभुत होई। कहा कहो अविगति गति होई॥
काचा कोटु दुआरे दस जांके। पांचि भए रषिवारे तांके॥
रहित पंचीस पांच के संगी। उमिग अमी सदा मन रंगी॥
सो लाषाई देह दुआरे। चकिर बाउरा सहित सवारे॥
बाविन किगुरा है तिस घरि के। तसकरि फिरते निस दिन डरिते॥
वसित लोक करि पगि मुषि नाही। चिहिन चक्र ते वाहर आही॥
रसना तास बासि कछु नाही। रूप रेष चिहिन अलिसाही॥
करित कहा फुनि रहन न होई। आपे हरि आपे है सोई॥
सांईदास गूंगा जो भाषे। विन भगिवानि गति कोई नि लाषे॥

नगिरी के विवहार सुनु विसम होति मनि माह।
सांईदास रहित अनंदि विनोदि मै दुभदा ते अलिसाव॥

आनंद सदा कछु नि वियोगा। पर्म वसति सुषि आनंदि लोका॥
आप आपि इनिही कछु पाया। सुति दारा अति बंधन माया॥
षांन पान कछु लेन न देना। नाहो अविगुन नाही गुने बषेना॥
ना कछु रूप सरूप अरेषा। ना कछु चिहन चक्र तहा देषा॥
ना कछु मीरि मलक सुलिताना। ना कछु ब्रह्म ना पौनि धियाना॥
ना कछु निर्मल मैल पछाना। ना कछु ब्रह्म ज्ञान ध्याना॥
ना कछु धरिन अकास दिषावे। रवि ससि कछु दिष्टी नहीं आवे॥
ना सुगंध गंध तहा आही। ना मुष बको जो आष सुनाही॥
ना आत्म परिमात्म कोई। ना कोई वेद उपारजि होई॥
नाह पदिमनी संकर विष्णु। नाही सीत तहां कछु न उष्णु॥
सांईदास तहा जो कोई गयो। आपा आपु सकल तजि दयो॥

दो०—बसे सहिज अनंद मै बिसिर्‌यो दूजा भाउ[1]।
सांईदास आपे मिल आपे भयो कछु कौतिक कहयो न जाय॥

---

१. ब्रह्म प्राप्ति की अवस्था का यहां वर्णन है। वस्तुतः वहां विरुद्ध धर्मों का प्रभाव है। इस बात को साईंदास जी ने इस रूप में कहा है कि—एक कहे तो होवे दूया—(एक कहूं वे दो हैं) दोय होय तां एक बखानो। इसलिए वे कह उठे—"दो एको एको दुय कहो" (दोनों एक हैं और एक ही दो हैं) वस्तुतः ब्रह्मजीव का अभेद या भेद कहना अति कठिन अतः—"ना कछु कहिया ना भाष्या जावे।"

१०४

अंभ मिले क्या कहे कहावे। तति सति सम करि रहे रहावे॥
पौनि मिले पौन हो सोई। माटी मिल माटी ही होई॥
जागृति होवे मिल जागृत हूआ। एक कहे तो होवे दूया॥
दोय होइ तां एक बषानो। एक कही ता दूजा जानो॥
दो एको एको दुय कहो। तौ दूजा इसि माही लहो॥
जो नही कहो तो अति बौरावो। जो मुष कहो तो कहि न आवो॥
ताते एह भला मनि आवे। ना कछु कहिआ ना भाष्या जावे॥
होइ रहियो विसमादि तिदाही। निरिषत आप अलिसाना जाही॥
सुनिन वकिन ते भयों निआरा। मिटी आपि जवि कीयो पसारा॥
परिस रह्यो द्रगि लागे वाही। कहो अंचरज जिह नाही॥
सांईदास कहा मुष भाषे। आप लषो लषि आपा लाषे॥
दो०—कहिन सुनिन गुरु है कहा कहेगौ कोय।
सांईदास हर भजि भर्म चित टारीए जो कछु होय सु होइ॥

१०५

हरि ते विना न कोइ सहाई। कहा कहो गति कही नि जाई॥
तुम सभ विध विध राषनहारे। अघि[1] तोरत करि देत सुषारे॥
हौ मतिहीनि सर्न जो आयो। पतित उधारन विरद सुनायो॥
गही ओटि रिदे अति भारी। तुम किरिपा गति होइ हमारी॥
भुजा गहे की लाजि परति है। निस दिन सेवक दीन करति है॥
होय क्रपाल क्रपानिध धारहु। आपुना जान चित नाह विसारहु॥
जिन अपिना आपि आपु तराना। तिन को विनती न दरो भुलाना॥
जो टारो जनु टरे न दरि ते। कहा कहो होया प्रति घरि ते॥
दीनि दियाल क्रपाल दिआला। करि किरिपा जन ताह सभाला॥
सांईदास जो कछु हरि भावे। वेग करौ तौ किउ उकिलावे॥
सलोकु—अपिने नाम की लाजि है पतित उधारन हरिनाम।
साईंदास निसवासरि छिन पल घडी सिमरो आठो जाम॥

---

१. अघि < अघ = पाप।

१०६

तुमि विन कहा कौनि गुनि आगिर। त्रिभवनि नाइकि सभि विधि आगर
उत्तम मधम्य नामु तिहारा। सकिल सुरि नरि रिदे जनि धारा॥
विगिसित आत्म हरि गुनि गाई। साध संगि मिल आनंदि पाई॥
गुरि किरिपा ते साध संगु पायो। पावित ही जसु वहु मुक्तायो॥
सुने वेद जो भाष सुनायो। जिनि सुनियो तिनही जसु गाइयो॥
जनि किरपा ततिकाल करीजे। किरि किरपा अधिक नामु जनि दीजै
आठ जाम जपि हरि को नामु। औरि नही है हम कछु काम॥
तुमरी भगित होय चित माही। विष्याबुध हम मति विसराही॥
दीनि वचिन हमरा सुणि जीजै। सांईदास हरि गुन मन दीजै॥

दीन दियाल समरथ हो तुम जाचक सभ को।
सांईदास तुम जाचक परिवान है जिह घटि परिगटि होय॥

१०७

हे केशवि हे किरपाल, हे ईशनि ईश।
हे दियाल तूं दैया करि, जगि जीवनि जगिदीस॥
तुझे छाडि कांसो कहो औरि नि कोई थाउ।
तू दाता सभ यगित का, सभ मै तेरो नाउ॥
कौनि मात्र मै कीटकी हौं किन कीटो माह।
केते दुआरे रिष मुनी सिध साध फल माह॥
भागीं हरि दरि पाईए, विन भागां कछु नाह।
भावी भाणे विच करे, तुझ भावे सोई करेह॥
मुक्ति ना पावे नाम विनु ते तटि तीर्थ भरिमाह।
सांईदास जे प्रभ किरपाल होइ ता पतित भी मुक्ते जांह॥

इति श्री बाबा सांईदास जी विचिरते[1] ज्ञान रतिन संपूर्ण सुभं भवित

---

१. विचि रते—यहां लिपिकार का दोष—शब्द विरचते होना चाहिए।

ओं स्वस्ति श्री गणेशाय नमः

अथ अंव्रत बानी[1]

दो०—अंव्रत हारि को नामु है जो चितु करि अचवाइ।
सांइीदास जरा रोग तन ना ग्रसे आवागउन मिटाइ॥

अंव्रत वानी अंव्रत हरि नाम। श्रविनी सुनि पावै विश्रामु॥
कोटि जनिम प्रभ मुक्ता करै। जो अंव्रत बानी चित ते धरै॥
जो अउगुन हो सभ मेटे। जो सत गुरि कर्पा करि भेटे॥
आवागउन ते लये उवारि। अयसी अंब्रत बांनी सार॥
अंव्रत वानी अव्रत रूपु। सांइीदास भज भये अनूप॥ १॥

आदि अंति लग एक ओंकारि। सर्व निरन्तर तिः बिस्थारि॥
आपे सांचा साचा नाउ। साचा साहव साचा थाउ॥
साचा अमर साचा नीशानु। साचा हुकम साचा परिवानु॥
साचा रूपु साचा भगिवानु। साचा पदि साचा निर्वानु॥
साची बानी साचा रंगु। सांइीदास वसत तिः संग॥ २॥

साचे कर्म साची कर्तूत। साजी साषी साचा सूत॥
साची प्रीति साचा निरंकारि। साची भक्त साचा दर्वारि॥
साचा अंव्रत हरि को नाउ। साची वुद्ध हरि हरि गुन गाउ॥
साचा मुल्ल साचा वापारि। साची प्रीति तरै संसारि॥
साचा साचा हरि निज जांनों। सांइीदास यदि साच समांनो॥ ३॥

---

१. 'अंव्रतवानी'—तत्सम शब्द अमृतवाणी है। यह बाबा साईंदास जी की रचना है। इसमें २४ अष्टपदियां हैं। प्रत्येक अष्टपदी के अंत में दोहा आया है। दस अर्द्धविलियों का एक पद है। इस प्रकार आठ पदों की एक अष्टपदी है। "अष्टपदी" छन्द भक्तकवि जयदेव के गीत गोविंद में सर्वप्रथम प्रयुक्त हुआ है। परवर्ती प्रायः सभी भक्तों ने इस छन्द में प्रभु की महिमा पाई है।

साचे गुण साची मनि बुद्धि। साचे भवन धरै मन सुद्ध॥
साची प्रीत साची तन जोत। साचे धरिम विषै सच होत॥
साचे सिमरे साचे कर्तार। साचे दृढ हरि सेती प्यारि॥
साची धर्न साचे ब्रह्मंडि। साचे धारि धरे नउपंडि॥
साचो साचा जिसका वर्तमानु। सांईदास तिस्तो कुर्वानु॥ ४॥

साचे तर्ते साचे भा। साचे भान मिले सभ जा॥
साचा गगन नरायणु साच। साची बुद्ध अउर परिकास॥
साची वानी साचा आपु। साच उपाय जपे सच जापु॥
साचे बणत बणाइ साचु। उपिजे विनसे साचो साचु॥
सर्व निरन्तर एको एक। गहु सांईदास दास तिः टेक॥ ५॥

साचे सिद्ध साध हरि ध्यावै। साचे तीर्थ अठ सठ नावै॥
साचे भक्त जो हरि रस राते। साचे जोग जुग्त हित्लाते॥
साचे शः साचे पातशाहः। राम नाम भजि पावे राहः॥
साचे घटि मय सत्त संतोषु। साचे राचे लगे न दोषु॥
साचे जीव जंत्र सभ साचे। सांईदास सच सर्नी राचे॥ ६॥

साची माया हरि भक्त मिला। साच भक्त विच राषे भा॥
साचे ऊधो साचे अविधूति। साचे जिं बस कीने दूति॥
साची बांनी अनिहदि झनिकार। साचे सो जनि हरि सो प्यारि
साचे सुंन्न मंदरि लिवलावे। गुरि प्रसादि सदा सुष पावै॥
साची राम नाम की योट। साईंदास जिः की हय योट॥ ७॥

साचा पाप साचा तिः रूपु। साचे घरि मै साच सरूपु॥
साचा हरि साचा हरि जापु। साचा थापउ थापे थापु॥
साचा अंव्रत सच्च पसा। साचा साचा साच सुभ॥
साचा साचा साचा साचु। जो कछु कीनो साचो साचु॥
साचा साचा साचा एक। गहु साईंदास दास तिः टेक॥ ८॥

दो०—सर्व निरंत्तर एक हय, सभ दिष्टी गुर एक।
सांईदास मानस की क्या योट हय, राम नाम करि टेक॥

अष्टपदी—२

एको पुषु सकल घट मा। धर्न अकास पताल सभ थाः ॥
एको एक एक प्रभ एक। आदि अंति लग एको एक ॥
एको पुर्षु उपावन हारि। जो सिमरे सो उतिरे पारि ॥
एको नाम एको नीशानु। हुकम चले ति सकल जहानु ॥
एको आप आप फुन एक। सांइीदास गहु हर्की टेक ॥ १ ॥

एको एक अनेका रूपु। नाम अनन्त सरूप अनूपु ॥
एको ब्रह्मु ब्रह्म हय एक। सर्व मांहि षेले फुनि एक ॥
एको चिहन चक्र तिः रंगि। जयसे दीप दसदः पतंग ॥
एको एक एक ओंकार। सर्वमाह तांका विसथारि ॥
एको एक कर्जाने जो। सांइीदास मत उत्तम सो ॥ २ ॥

साहव एक आप दातारि। सकल सिष्ट को देवनहारि ॥
एको राम एक गोपाल। एको भक्तां सदा दयाल ॥
एको क्रहन एक भगिवानु। साध संगि मल एको जानु ॥
एको कर्त्ता हर्त्ता एक। प्रान पुर्षु प्रानन की टेक ॥
मय वलहारि सदा बलिहारि। सांइीदास तां परि सदवार ॥ ३ ॥

एको ए नंद नंदन नंदिलाल। एको सभ जीयन प्रतपाल ॥
एको महाराजि त्रैलोक। एको कर्ता सभ से थोक ॥
एको तिरआ पुर्ष ह एक। अनेक माह जांनो हरि एक ॥
एक हि कीनो सकल पसार। तांको अंतु न पारावारि ॥
एको साचा दीनि दयाल। सांईं दास तिः दिष्ट निहाल ॥ ४ ॥

एक मछ कछ वाराह। एको नरिसिंघ भयो सहा ॥
एको मदन मुरारी राम। एको पर्स राम हर्नाम ॥
एको विष्न महादेअवु। एको जौग जुगंन्तर थापु ॥
एको ब्रह्म एको इन्द्र। एको सेस सहस्त्र फणिन्द्र ॥
एको सति सरूप तुम्नामु। सांइीदास जो करै सु रामु ॥ ५ ॥

एको धर्ती अंबर ईस। एको हरि एको जगिदीस॥
एको पविन पानी संसारि। एको एक एक कर्तारि॥
एको मंत्र माला को नाउ। एको उोंकारि पसरचो सभ थाउ
एको गुणा निधानि अपारि। अलष्य निरंजनि गिनत न पार॥
एको एक अनेकतिः रूपु। सांईदास हय तत्त सरूपु॥ ६॥

एको मदन मुरारी श्री हरि। एको राम क्रहन वंसी धरि॥
एको रचना राचन हरि। एको कहित सवद बीचारि॥
एको ब्रह्म जोति सभ माहः। एको सभ मय उलिटि समाह॥
एको ज्ञानी ध्यानो आपु। एको रह्यो सर्व बीआपु॥
एको नरंकारि नरि रूपु। सांईदास वह तत्त सरूपु॥ ७॥

एको पर्म पुर्पु सभ ठउर। एको राम रम्यो नहि अउर॥
एको कउलापति परिमेश्वरि। एको गोंविद एक महेश्वरि॥
एको सकल कला भरिपूरि। एको एक निकटि नहि दूरि॥
एको कर्णामय नंदलाल। एको पूर्नु पुर्पु गुपाल॥
एको वर्तमान हरि जानु। सांईदास तूं जान प्रमानु॥ ८॥

दो०—आपे आपे आप प्रभ, दूसरि नाही कोइ।
सांईदास सर्व रंगमय आप हय, जो सोभी मनि होइ॥

अष्टपदी—३

आपे करिता हर्त्ता आप। आपे दारा भर्ता आप॥
आपे साधू आपे चोर। आपे वरिणयो नंदि किसोरि॥
आपे मोनी, बोले आप। आपे रह्यो सर्व बीयाप॥
आपे पूत आप पित मात। आपे नीची उत्तम जाति॥
आपे षेल षिलाविनहारि। सांईदास आपे परिवारि॥ १॥

आपे हस्त आप हय घोडाः। आपे अरयन आप हय भोराः॥
आपे ध्रू आपे प्रहलादि। आपे पूर्न आदि जुगादि॥
आपे मूरिष तत्त ज्ञान। आपे अठसठ को इसनानु॥
आपे अपिनी जाणे बात। आपे उपिजे आप समात॥
आपे सूर आप बलहर्तु। सांईदास ताही सभसुर्त॥ २॥

आपे पसु आपे सुर्जात। आपे तरिवरि आपे पात॥
आपे सिद्ध साध अविधूत। आपे मुष परि मिले[1] भभूति॥
आपे जोगी अलष कहावे। आप डगम्बर्ताडी लावे॥
आपे अपिनी कीरति करे। आपे जीवे आपे मरे॥
आपे पउन पानी वसंतर। सांईदास जो जाणे अंतर॥ ३॥

आपे ब्रह्म उपाविन हारि। आपे गगन गुफा निरधारि॥
आपे दाता आपे भुक्ता। आपे सकल घटामय जुक्ता॥
आपे तीरथ तबदोवासी। आपे अस्थर आप उदासी॥
आपे पूरन जलि थल माह। पूर रह्यो घट घट मय ताह॥
आपे ज्ञानी ध्यानी आप। सांईदास हरि अयसे जापु॥ ४॥

आपे एक आप विसथारि। आपे भउ, राइ, द्रणहार॥
आपे जोध महाबल सूरि। आपे ब्रह्म सकल भरिपूरि॥
आपे राज महाबलि राज। आपे दीन सदा मुहस्थाजु॥
आपे कागा आपे हंस। आपे उत्तम मध्यम बंस॥
आपे नटूआ संकरा। वलि वलि सांईदास सदा॥ ५॥

आपे आपे ऊच आपे नीच। आपे न्यारो आपे वीच॥
आपे मनोहरि आपे राम। सकल सिष्ट के साजे काम॥
आपे पापी पाप कमावे। आपे प्रगट बैकुंठ सिधावे॥
आपे सहज रहे गलतान। आपे गहरि गंभीरि सुजान॥
आपे विष्णु कहावे वीरि। सांईदास हरि चल वल धीरि॥ ६॥

आपे धूप आप हय छाउ। आपे चलति लहति विश्राम॥
आपे ससि अरि आपे भानु। आपे उडगण भयो विमानु॥
आपे धर्ती आप अकास। आपे धउल धर्न की आस॥
आपे मीरि मलक सुलतान। आपे दीन रंक भी जान॥
आपे राम रमयो सभ थाह। सांईदास अंतर कछु नाह॥ ७॥

---

१. मिलो=मले=लगाना।

आपे गोविंद जनि कर्पाल। आपे पतित सदा दयाल॥
आपे पर्म पुर्षु परिमेश्वरि। आपे सांत सरूप महेश्वरि॥
आपे सिष्ट उपावनि हारि। आपे सकल सिष्ट करितार॥
आपे आतम आपे जीउ। आपे तिरिआ आपे पीउ॥
आपे सील आपे संतोषु। सांईदास कछु लगे न दोषु॥ ८॥

दो०—सभ जगु विनसनिहारि हय विनसे नाही एक।
सांईदास अहिनस हरि गुण गाईये राम नाम की टेक॥

अष्टपदी—४

एक न विनसे हरि चितलावे। एक न विनसे अहनिस ध्यावे॥
एक न विनसे परि उपकारी। एक न विनसे सर्न मुरारी॥
एक न विनसे हर्गुण गाय। एक न विनसे नाम ध्याय॥
एक नि विनसे जिह घटि प्रेमु। एक न विनसे सिमरन नेम॥
एक न विनसे हरि की सर्ना। सांईदास प्रभ सर्वस भर्ना॥ १॥

एक न विनसे साध के संग। एक न विनसे प्रभ के रंग॥
एक नि विनसे जो प्रभ चीत। एक न विनसे जो हर्मीत॥
एक न विनसे साध संग दरहे। एक न विनसे हरि हरि कहे॥
एक नि विनसे हरि की सेउ। एक न विनसे आतम भेउ॥
एक विनसे प्रेम वलभा। सांईदास उत्तम गत पा॥ २॥

एक न विनसे बोले हर्वानी। एकनि विन से सर्व पछानी॥
एक न विनसे सिमरण रीत। एक न विनसे मन पर्तीत॥
एक न विनसे हरि रस पीवे। एक न विनसे निर्मल थीवे॥
एक न विनसे भक्त कमावे। एक न विनसे सर्नी आवे॥
एक न विनसे निर्मल ज्ञान। सांईदास घट लेय पछान॥ ३॥

एक न विनसे पंज वस करे। एक न विनसे जीवित मरे॥
एक न विनसे हर्सो प्रीत। एक न विनसे निर्मल रीत॥
एक न विनसे क्रोध निवारै। एक न विनसे हरि चित धारै॥
एक न विनसे विष्या ते रहे। एक न विनसे हर्गुण कहे॥

एक न विनसे ब्रह्म पछाने। एक न विनसे सभ सम जाने ।।
एक न विनसे परम पुरातम्। सांझीदास जाणे जो आत्म् ।। ४ ।।

एक न विनसे नीच कहावे। एक न विनसे हरि चर्नी धावे ।।
एक न विनसे हर्गुन वानी। एक न विनसे ब्रह्म ज्ञानी ।।
एक न विनसे साध संगत मीत। एक न विनसे हर्गुण चीत ।।
एक न विनसे परि उपकारी। एक न बिनसे नाम चितारी ।।
एक न विनसे जिह हरि सोप्यारी। सांझीदास तिस तो बलहारि।। ५।।

एक न विनसे लोभ गवाए। एक न विनसे हरि चित लाए ।।
एक न विनसे हरि संगत रचै। एक नि विनसे हरि कीर्तन मचे ।।
एक न विनसे ब्रह्म विचारी। एक न विनसे त्रिभवनि दातारी।।
एक न विनसे पूरन ज्ञान। एक न विनसे हरि सो ध्यान ।।
एक न विनसे हरि जस कहे। सांझीदास अनभय हो रहे ।। ६ ।।

एक न विनसे पूरन परिमेश्वरि। एक न विनसे सर्व वसेस्वर ।।
एक न विनसे हरि को नाम। एक नि विनसे आतम राम ।।
एक न विनसे प्रभ संगत राता। एक न विनसे नाम पछाता ।।
एक न विनसे होय निरास। एक न विनसे साध निवास ।।
एक न विनसे हर्गुण गात। सांझीदास ता परि वल जात ।। ७ ।।

एक न विनसे करि जप तप पूजा। एक न विनसे जिह नाही दूजा
एक न विनसे जाने एक। एक न विनसे हर्की टेक ।।
एक न विनसे कथा हर करे। एक न विनसे सर्नी परे ।।
एक न विनसे सुंन्न समाध। एक न विनसे अगम अगाध ।।
एक न विनसे जिह आतम जीता। सांझीदास तिह प्रभ वस कीता।। ८।।

दो०—सभु जगु विनसत देषयो चला जात दिन रात।
सांझीदास विन भक्त हरि धृग परिछाझी पात ।।

अष्टपदी—५

विनसे सो जो गुण नहि गावे। विनसे सो जो हर्न धियावे ।।
विनसे सो प्रभ को नही जाने। विनसे सो विष्या मनि माने ।।

विनसे सो नहि साध संगत रहे। विनसे सो जो मिथ्या कहे ॥
विनसे सो रहे सदा अचेत। ताकों कबूं न उविरे षेत ॥
विनसे सो परि निंद्या करै। सांईदास सो जनमे मरै ॥ १ ॥

विनसे सो प्रभ कों नहीं चेते। विनसे सो हरि सो नहि हेते ॥
विनसे सो बुरा साध को कहे। विनिसे सो विष्या रच रहे ॥
विनसे सो जो क्रोध मन करै। विनसे सो माया चित धरै ॥
विनसे सो जो रहे कुचील। हरि सिमरण बिनु कहा सुचील ॥
विनसे सो हर कथा न जाने। सांईदास प्रभ क्रपा समाने ॥ २ ॥

विनिसे सो हरि सो ना रचे। विनसे सो हरि गुण ना मचे ॥
विनसे सो हरि गुण नहि गावै। विनसे सो हरि को नहि ध्यावे ॥
विनसे सो विष्या को ध्यावे। विनसे सो जो लोभ लुभावे ॥
विनसे सो जनि भूला आपु। विनसे सो जाणे विष जापु ॥
विनसे सो जो सदा विकारी। सांईदास तिह वाजी हारी ॥ ३ ॥

विनसे सो जो हर् न पछाने। विनहरि अउरि रिदे करि जाणे
विनसे सो जो ब्रह्म दुखाए। विन भगवान आनर् बसाए ॥
विनसे सो हरि न नाम लए। अहि निस आतम विष को दए ॥
विनसे सो दूजा करि जाने। विन भगिवान अउर चित आने ॥
विनसे सो विकारि कों धावे। सांईदास वहि गत नहि पावे ॥ ४ ॥

विनसे सो हरि सर्न नही पडे। विनसे सो पंचन नही लडे ॥
विनसे सो हरि सो नहि भेटे। विनसे सो हउमा नहीं मेटे ॥
विनसे सो जिन रिदे न प्रेम। हरि सिमरण को नही नेम ॥
विनसे सो हरि हेत न जाणे। प्रभ की प्रीत नि मन मय आणे ॥
विनसे सो हरि सिमरण हीन। सांईदास वह सदा अधीन ॥ ५ ॥

विनसे सो जिन मनि अभमान। विनसे सो हरि धरे न ध्यान ॥
विनसे सो पाषंडी होइ। हरि सिमरण ते भूला सोइ ॥
विनसे सो विष्या फल मोह। विनसे सो जिस मन मो ध्रोह ॥
विनसे सो मन वस ना करे। विनसे सो विष्या संग भरे ॥
विनसे सो गुरि चर्न न लागे। सांईदास तिह देषु अभागे ॥ ६ ॥

विनसे सो हर्कीत नहि करे। विनसे सो दुभधा चित धरे॥
विनसे सो जिस लालच दाम। विना भजन धारे अनिकाम॥
विनसे सो हर्को विसराइ। विन हरि सिमरण अउध गवाइ
विनसे सो गुरि मंत्र विसारे। जनिम अमोल लजान विकारे॥
विनसे सो जिस मर्मु न जाना। सांइीदास वह मर्म भुलाना॥ ७॥

विनसे सो हरि पंथ न जाने। विनसे सो हरि साध न माने॥
विनसे सो संसा मन करे। विनसे सो हर्चित ना धरे॥
विनसे सो ममता मद माता। विनसे सो जिस हर्नपछाता॥
विनसे नाम विना तन अंध। रोम रोम आवत दुर्गंध॥
विनसे सो जिस आप भुलावे। वारि वारि जूंनी भरिमावे॥
सांइीदास विनसे जनि सोइ। हरि सिमरण ते भूला होइ॥ ८॥

सलोकु–हरि हरि नाम जनि जो जपे अउर साध दस द्वारि।
सांइीदास जरा मर्न ते न अचेता तितिह अपर अपारि॥

अष्टपदी—६

हरि सिमरे सो सदा सुखाला। ताके ऊपरि आप दयाला॥
हरि सिमरे तेऊ परिवान। अहि निस हरि सो धरेध्यानि॥
हरि सिमरे सो कबूं न मरे। भउ जल सागर अनिभय तरे॥
हरि सिमरे सो सर्व ते ऊचा। सोइी जानो मुक्त पहूचा॥
हरि सिमरे सो सोभावानु। सांइीदास तिस्तो कुर्वानु॥ १॥

हरि सिमरे सो जम ते छूटे। प्रभ की मत अंतरि ते तूटे॥
हरि सिमरे सो सुंन्न विराजे। अहिनिस गह हर् वाको गाजे॥
हरि सिमरे सो राजनराजा। सुंन्न सविदतिह अंतिर वाजा॥
हरि सिमरे पावे सुःखमानु। दुर्गा माही होय नहान॥
हरि सिमरे सो पुर्ष निर्धानु। सांइीदास सो पूर्न जानु॥ २॥

हरि सिमरे सो भउ जल तरै। गुर के सवद नि जनमे मरे॥
हरि सिमरेतिस दुःख न विआपे। सर्व घटा हरि हर करि थापे॥
हरि सिमरे विष्या ते रहे। गुरि प्रसाद अंम्रत रस गहे॥

हरि सिमरे सोभा जगि होइ। दर्गा ठाक नि साके कोइ ॥
हरि सिमरे सो पाट हढावे। सांझीदास दुःख तज सुष पावे ॥ ३ ॥

हरि सिमरे सो पूरन ज्ञान। जाके रिदे वसे भगिवानि ॥
हरि सिमरे निर्मल हो रहे। कबू न मुष ते मिथ्या कहे ॥
हरिसिमरे तिस सभकछु सूझे। गुरिप्रसादसुंन्न गृह विध बूझे ॥
हरि सिमरे मिटया[1] वागउनु। हरि सिमरे पर्से त्रय भउन ॥
हरिसिमरे तिस वातको जानु। सांझीदास सदा कुर्वानु ॥ ४ ॥

हरि सिमरे सो सुष का वासी। सदा सदा मेटे अविनासी ॥
हरि सिमरे सो आप भर्मेरे। सकल जगत तिह सर्नी परे ॥
हरि सिमरे सो आप भगिवानु। जा के अंतर हरि रस ज्ञानु ॥
हरि सिमरे सो हरि का दासु। हरि सिमरे आतम परिकास ॥
हरि सिमरे उत्तम मत तांकी। सांझीदास गति क्या कहु बांकी ॥ ५ ॥

हरिसिमरे अहि निस गुनि गाइ। गुरि प्रसाद सुंन्न लिव लाइ ॥
हरि सिमरे सो रत्ते साधा। गुरि प्रसाद छूडे मृग बांधा ॥
हरि मिसरे मेटे अभिमान। सोझी होवे दर् परवानु ॥
हरि सिमरे सो निहजल आसनु। गुर्प्रसाद सर्व दुःख नासन ॥
हरि सिमरे पूरन्ता तया। सांझीदास तिह जगत वया ॥ ६ ॥

हरि सिमरे आतम वस राषे। गुरि प्रसादि अंवृत रस चाषे ॥
हरि सिमरे सो पदि निर्वानि। राम नाम सो धरे धियान ॥
हरि सिमरे सोझी सुरि ज्ञान। हरि दर्गा सोझी परिवान ॥
हरि सिमरे उत्तम जगिदीस। हरि सिमरे सभ जगि को ईस
हरि सिमरे सो साध कहावे। सांझीदास दास गति पावे ॥ ७ ॥

हरि सिमरे सोझी गत पाइ। सहज समाध रहे लिवलाइ ॥
हरि सिमरे सोझी अविनाशी। प्रेम भक्त को घट घटि वाशी ॥
हरि सिमरे मन माह समावे। गुर प्रसादि अंवृत फल षावे ॥

---

१. "आ" लिपिकार से छूट गया है।

हरि सिमरे तिस विघन न लागे। गुरि प्रसादि अनंदि घट जागे
हरि सिमरे जो ओहो कहे। सांईदास दास सो चहे॥ ८॥

दो०—सभ जगु सोया देषयो को जागृत हय नाह।
जो जागृत हय सांईदास सोई सुष के माह॥

अष्टपदी—७

जागे सो जनि मनि परितीति। जागे सो जिस निर्मल रीति॥
जागे सो जिस ज्ञानि प्रकास। जागे सो जिस सुंन्न की आस॥
जागे सो जिस सति गुर दया। जागे सो जिस हर घटि लया॥
जागे सो जिस अंतर पीड। हरि सिमरण विनु विकल शरीरि
जागे सो जिस प्रेम रिद अंतर। सांईदास कछु नाह निरंत्तर॥ १॥

जागे सो जगिदीस पछाने। जागे सो हरि दरि को माने॥
जागे सो जो ब्रह्म गियानी। जागे सो हरि कथा वषानी
जागे सो ममता ते रहे। जागे सो जो हरि जस कहे॥
जागे सो वोले हरि वानी। प्रेम भक्त घटि माह पछानी॥
जागे सो हरि रस मतवाला। सांईदास तिह चन रवाला:॥ २॥

जागे सो जो सभ सम जांणे। जागे सो जो तत्त पछाने॥
जागे सो चउरासी वेधा। जागे सो जो हरि रस गेधा॥
जागे सो जो अहि निस जागे। जागे सो जो हरि सो लागे॥
जागे सो जो हरि रस राता। जागे सो हरि अंव्रत माता॥
जागे सो आप दे त्याग। सांईदास तिह पूरन भाग॥ ३॥

जागे सो जो निगम विचारे। अहि निस रसना नाम उचारे॥
जागे सो जो नर् बुध्यवानु। निस दिन सिमरे पुर्ष निधान॥
जागे सो जो सति गुरि सर्ना। तांका चिह्न चक्र क्या वर्ना॥
जागे सो जिस हरि जस प्रीत। प्रेम भक्त की उपजी रीत॥
जागे सो जो निर्मल जोत। सांईदास दास हरि ओट॥ ४॥

जागे सो जिस सभ कछु सूझे। अहि निस अगिमि निगम विध बूझे
जागे सो जिस आतम चीन्हा। कोटि जनम प्रभ मुक्ता कीना॥

जागे सो जो हर्का मीतु। प्रेम भक्त सो निर्मल चीतु॥
जागे सो जिस ब्रह्म गियान। सदा रषे सतिगुरि सो धियान॥
जागे सो जिस मनि पतयाना। सांईदास दास दर्माना॥ ५॥

जागे सो जिस सीस न होवे। हरि जल सेती मुख को धोवे॥
जागे सो जो पंचन भाषे। तांको वस करिअहि निस राषे॥
जागे सो जिस निर्मल ज्ञानु। पूर्ण पुर्ष सो लगो धियानु॥
जागे सो जिस नाम हुलास। सदा रषे हरि रसकी प्यासि॥
जागे सो जिस सत संतोषु। सांईदास मिटया तिस दोषाः॥ ६॥

जागे सो जस घटि मय पीडि। वेदना जाणे सकल सरीरि॥
जागे सो जिस हरि संगत हेत। अहि निस लिउ आवे हर सेत॥
जागे सो जिस हर्मुष जानी। सति गुरि मिल अंतरि ठहिरानी॥
जागे सो जो ब्रह्म गियानी। घटि घटि भीतिरि ब्रह्म पछानी॥
जागे सो जिस सतिगुरि मया। सांईदास तिह सर्नी पया॥ ७॥

जागे सो जिस हरि हरि करिया। हर्रस अंव्रत मन मोल्लयः॥
जागे सो जिस ब्रह्म रिद माही। दर्सन देषत जम डरि जाही॥
जागे सो जिस प्रीत हर्कन। राम भक्त घट अन्तर्लीन॥
जागे सो जिस हर्मन भायो। हरि भायो त्रयताप मिटायो॥
जागे सो जिस अनहद वानी। सांईदास घटि माह समानी॥ ८॥

दो०—हरि का नामु अमोल हय निग्मसुर्त[1] विष्यान।
सांईदास रंचक मन ते मन रखै पायो परिम निधानि॥

अष्टपदी—८

हर्कानाम जप पूरण भागि। तांते मिट गए सकल संताप॥
हरि का नाम सोई जन लेवे। जीविपिनु अर्पे हरि देवे॥
हरि का नाम जपे सुष पावे। वारि वारि जूंनी नहि आवे॥
हरि का नाम महा सुषदाई। आदि अांत्तमध्य सदा सहाई॥
हरि का नाम विनासे पाप। सांईदास सदा हरि जाप॥ १॥

---

१. निगम श्रुति।

हरि का नाम जपत सभ ऊचा। जो सिमरे मुक्त पहूचा ॥
हरि का नाम संत मन वसे। तिहि प्रसादि दूत जन मरे ॥
हरि का नाम जपे सो पूरा। ताके मनि के मिटे विसूरा ॥
हरि का नाम जपो रे भाइी। याही मय तुमरी भलिआइी ॥
हरि का नाम सदा सुषिदाइी। सांइीदास दास लिउ लाइी ॥ २ ॥

हरि का नाम साध संग पाए। निस वासरि हरिके गुनि गाए ॥
हरिका नाम जप गनिका तरी। गउतमानारि जपति निसतरी
हरि का नाम गंभीरि सुजान। जो सिमरे पूरिण निर्वान ॥
हर्कानाम जपे जो कोई। मनिका संसा डारे षोई ॥
हर्कानाम मुक्त को दाता। सांइीदास नवि षंडी जाता ॥ ३ ॥

हर्कानाम संत जनि ओट। जपि हर्नाम तजो विष पोट ॥
हरि का नाम जनि तारण हारि। जो सिमरे सोउ तिरे पारि ॥
हरि का नाम चुकाये भीडि। दूरि करे तनि होवे पीडि ॥
हरि का नाम जपे वडिआइी। जगि भीतिरि होवे प्रभताइी ॥
हरि का नाम जपत दुखजाइ। सांइीदास पदि सांत समाइ ॥ ४ ॥

हरि का नाम जपे सो जागे। गुरि प्रसादि हरि सेवा लागे ॥
हरि का नाम जपति विश्राम। गुरि प्रसादि पूरण सभ काम ॥
हरि का नाम सर्व सुषिदाइी। मिटे वियोग मन हरि राइी ॥
हरि को नाम जपे जो कोइ। तीनि लोक ते न्यारा होइ ॥
हरि का नाम जपे दिन रयन। सांइीदास तिहि घटि मह चैयन ॥ ५ ॥

हरि का नाम जपे सुरि ज्ञान। गुरि प्रसादि हरि रिदे ध्यानि ॥
हरि का नाम जपे संन्यासी। गुरि प्रसादि काटी जम फासी ॥
हरि का नाम जपे जो प्रानी। गुरि प्रसादि मिटि आविण जाणी
हरि का नाम जपे परिवानु। जम वयरी की चूकत कानि ॥
हरि का नाम जपे सो पूरा। सांइीदास मिटि सकल विसूरा ॥ ६ ॥

हरि का नाम जपे वयरागी। गुरि प्रसादि भय सकल तयागी
हर्कानाम जपे मनि माह। गुरि प्रसादि अंतर्कछु नाह ॥
हरि का नाम जपे नही मरे। गुरि प्रसादि भय सागर तरे ॥

हरि का नाम परिम पुरिषोतम । निराकारि निरवयर न रोतम
हरि का नाम जपे चितराता । सांझीदास नही जूंनि फराता ॥ ७ ॥

हरि का नाम जपे चितु लाइ । गुरि प्रसादि दुर्मत मिटि जाइ ॥
हरि का नाम मुक्त को दाता । तिहि प्रसादि नहीं जूंन फिराता
हरिका नामु हय अंमृत बाणी । तिहि प्रसादि सभ सुर्त पछानी
हरि का नाम जीविण को मूलु । तिस सिमरे तनि जावे सूलु ॥
हरि का नाम लिउो रिदे संम्हाल । सांझीदास जपिए करितारि ॥ ८ ॥

सलोकु—पतिति उधारण मैय सुणे काज सवारण राम ।
सांझीदास ताह उोट गह पाप जाय संग्य लिये हरिनाम ॥

अष्टपदी—९

सुनियत होय हरि भक्त जन तारन । सुनियत हो हरि काज सवारन ॥
सुनियत हो हरि पतित उधारन । सुनियत हो हरि असुरि सिहारिन
सुनियति हो गोवर्धन धारन । सुनियति हो हरि दुष्ट निवारन ॥
सुनियति हो हरि रघपति राइ । सुनिअति हो हरि भक्त सहाइ ॥
सुनियति हो मुरिली धरि माधो । सांझीदास प्रभ अन्तर्साधो ।१।

सुनियति हो गोविंद मुरारी । सुनियति हो हरि कुंजि विहारो ॥
सुनिये तो महाराजन राजा । सुनियति हो हरि कारज साजा ॥
सुनियति हो त्रभवनि के दाता । सुनियति हो घटि घटि में राता ॥
सुनियति हो हरि गगनि निवासी । सुनियति हो हरि प्रभ अविनासी ॥
सुनियति हो हरि पुर्ष निधान । सांझीदास सुनि पति निर्वान ।२।

सुनिअति हो त्रिभवनि के राया । सुनियति हो अनभय सुखदाया ॥
सुनियति हो पूरण परिमेश्वरि । सुनियति हो हरि आप महेश्वरि ॥
सुनिअति हो धर्नी धरि गोविंद । सुनियति हो पूरण परिमानंद ॥
सुनियति हो वसु देयुकि नंन्दन । सुनियति हो हरि असुरिनकन्दन ॥
सुनियति हो निरकार अकलहर । सांझीदास सुनियति हय जलधरि। ३।

सुनियति हो मुकंदि मुरारी । सुनियति हो संतन हितकारी ॥
सुनियति हो राविण को मारन । सुनियति हो वभछनि तारन ॥

सुनियति हो हरि सन्त सहाई। सुनियति हो भक्तन सुषिदाई ।।
सुनियति हो दुख नासननामा। सुनियति हो घटि घटि विस्रामा ।।
सुनियति हो धारन सभ धर्ना। सांझीदास रूप क्या वर्ना ।४।

सुनियति हो करुणानिधि स्वामी। सुनिअत हो हरि अंतरजामी ।।
सुनियति हो भक्तनि सिर ताजु। सुनिअति हो महाराजनराजु ।।
सुनियति हो हरि मुक्त को दायक। सुनिअति हो भक्ता के नाइक ।।
सुनियति हो हरि अपरमवासी। सुनियति हो हरि सास विलासी ।।
सुनियति हो हरि ब्रह्म गियान। सांझीदास पूरण पद जानि ।५।

सुनियति हो हर्केवल ब्रह्म। सुनिअति हो हरि निर्मल धर्म ।।
सुनियति हो कउलापति केस्वर। सुनिअति हो पूरण परिमेश्वरि ।।
सुनियति हो हरि नंदि के नंदा। सुनियति हो विंद्रावनि चंदा ।।
सुनियति हो हर्कीट पछारन। सुनिअति हो हरि वकी उधारन ।।
सुनिअति हो वृजवासी द्याल। सांझीदास भज भये निहालि ।६।

सुनिअति हो हरि हरि हरिवर। सुनिअति हो माधो धर्नी धरि ।।
सुनियति हो हरि ईसनिइीस। सुनिअति हो जगि के जगिदीस ।।
सुनिअति हो हरि राम के रामा। सुनिअति हो हरि पूर्ण कामा ।।
सुनियति हो निरवयर गोसाइी। सुनियति हो व्याप्यौ सभ थाइी ।।
सुनिअति हो वावन विपधारी। सुनियति हो दुख टारिण हारी ।।
सुनिअति हो जन पयज वढावनु। सांझीदास सत्त गुण गाविन ।७।

सुनिअति हो हरिकेस गुसांइी। सुनिअति हो सुंदरि अधिकाइी ।।
सुनियति हो हर्नंदकुमारि। सुनियति हो हरि अपरि अपारि ।।
सुनिअति हो हरि हरि भगिवान। सुनियति हो हरि पुर्ष निधानि ।।
सुनियति हो हरि बिश्वु के धारनि। सुनिअति हो हरि प्राण अधारन ।।
सुनियति हो सीतापति राम। सांझीदास सुनि अति विश्राम ।८।

सलोकु–सुंन्न सवद मनि बूझ के तत पद करि वियुहारि।
सांझीदास अहि निस सति गुरि चर्न लग तारे तारण हारि।।

अष्टपदी—१०

निस दिन सति गुरि चर्नी लागो। अंव्रत हरि रस विष्या को त्यागो॥
सति गुरि चर्न सर्न सो राचो। विष्या तज अंव्रत सो माचो॥
सति गुरि चर्न जोऊ जन राता। सो जनि अवगति गत में माता॥
सति गुरि चर्न मिले वडिभागि। प्रेम भक्त जिस आतम लाग॥
सतिगुर चर्न धारि मनि माह। सांइीदास सति गुरि बलि जांह।१।

सतिगुरि चर्न मुक्त के दाता। तिह प्रसादि हरि के रंग्पराता॥
सति गुरि चर्न जपत विश्रामु। वहुडो जनम सो नाही काम॥
सति गुर चर्न मय सुर्त समानी। गुरि प्रसाद हरि सो लिउ लानी॥
सति गुरि चर्न प्रीति करि ध्यावे। जम वयरी की तलवि न आवे॥
सति गुरि चर्न धारि मनि माह। सदा रहे सुख आनंदि तांहि॥
सति गुरि चर्न पतित को तारन। सांइीदास प्रभ अपरि अपारन।२।

सति गुरि चर्न मिले मल खोवे। गुरि प्रसादि सर्व सुष होवे॥
सति गुरि चर्न जपो रे प्रानी। गुरि प्रसादि बोले हर्वानी॥
सति गुरि चर्न सकल जग तारन। भउ जल कठन सो पार उतारन॥
सति गुरि चर्न रचत दुषजाइ। भय सागर ते पार पराइ॥
सति गुरि चर्न जो परे। सांइीदास तांके दुष हरे।३।

सति गुरि चर्न जपति सुख होवे। जन्मि जन्म सकले दुख खोवे॥
सति गुरि चर्न रषो घट माह। सुरि नर्मुन तांके बल जांह॥
सति गुरि चर्न सीस परि धरो। गुरि प्रसादि निश्चल सुष करो॥
सति गुरि चर्न जास निज गहे। आविन जाविन ते वह रहे॥
सति गुरि चर्न प्रानि सुख दाइी। सांइीदास घटि लिउो वसाइी।४।

सति गुरि चर्न चेत घटि माहि। सुंन्न समाध रहो लिउ लाय॥
सति गुरि चर्न वषाने जोय। सदा सदा जग मुक्ता होय॥
सति गुरि चर्न कटे जम फास। निसवासरि विति माह हुलास॥
सति गुर चर्न मले दुषजाइ। जिउ गंग्या जल जगत्तराइ॥
सति गुरि जर्न जपत कै तरै। सांइीदास चर्ना पर परै।५।

सति गुरि चर्न लग पाप विनासा। सति गुरि चर्ण मन पूरण आसा।।
सति गुरि चर्न हय सर्व निधान। जो सिमरे सो पावे दान।।
सति गुरि चर्न जोइी चित लावे। आवा गउन को भर्म मिटावे।।
सति गुरि चर्न जोइी चित लावे। आवा गउन को भर्म मिटावे।।
सति गुर चर्न नाद सुष करे। सांइीदास चर्नो दुष हरे।६।

सति गुरि चर्न तीरथ इस्नान। जो सिमरे सो पूरण जान।।
सति गुरि चर्न चेत सुष अधक। जिउ पंछी मुक्ता वस बधक।।
सति गुरि चर्न मटावे पाप। मुष अःहिनिसि कीजे यहि जाप
सति गुरि चर्न प्रानि सुषदाता। जो सिमरे त्रैयीलोकी जात्ता।।
सति गुरि चर्न निर्मल नरि जोत। सांइीदास चर्नो की ओटि।७।

सति गुरि चर्न सेवै सुरि ज्ञानी। मुष अहिनिस उचिरे हर्वानी।।
सति गुरि चर्न रूप भगवान। जो सिमरे सो तरया जानु।।
सति गुरि चर्न क्या महिमा वर्ना। जो सिमरे हो वृद्ध ते तर्ना।।
सति गुरि चर्न प्रानि प्राना। सतिगुरि चर्न चेत ना हाना।।
सति गुरि चर्न प्रगिटि नीशान। सांइीदास निसवासरि ध्यान।८।

सलोकु–नमो नमो हरिकेस[1] हरि पूरण पुर्ष निधान।
सांइीदास आदि लग एक हय उोंकारि हरि जान।।

अष्टपदी ११

नमो नमो उोंकारि अकल हरि। नमो नमो पूरण वंसी धरि।।
नमो नमो हरि मछ अवितारी। नमो नमो संतन हितकारी।।
नमो नमो सुषकरि धर्धर्ना। नमो नमो नर्सिह अपर्ना।।
नमो नमो हरि घटि घटि वासी। नमो नमो पूरण अविनासी।।
नमो नमो वावन विपधारी। नमो नमो सांइीदास मुरारी।१।

नमो नमो जमिदिग्नक सुत हरि। नमो नमो श्रीपति सारंग्य धरि।।
नमो नमो क्रहन करुणा निध। नमो नमो हरि वोध विमल वुध।।
नमो नमो गोविंद वनिवारी। नमो नमो हरि कुंजि विहारी।।

---

१. हृषीकेश शब्द की सम्भावना है।

नमो नमो त्रिभवन के राया। नमो नमो अनभय सुषदाया॥
नमो नमो रिषकेश गोसाइी। सांइीदास नमो हरितांइी।२।

नमो नमो मोहन रिदवानी। नमो नमो हरि सारंग्य पानी॥
नमो नमो गोवर्धन धारी। नमो नमो हरि पतित उधारी॥
नमो नमो निरकारि निरंजन। नमो नमो हरि द्रग मय अंजन॥
नमो नमो प्रान के प्रान। नमो नमो पूरण भगिवान॥
नमो नमो हरि ब्रह्म गियान। सांइीदास नमो हरि जान।३।

नमो नमो हरि प्रानि उधारी। नमो नमो घटि घट उजयारी॥
नमो नमो प्रभ स्याम सुन्दर हर। नमो नमो लक्ष्मन श्री रघवरि॥
नमो नमो हर्मुक्त के दाता। नमो नमो त्रयीलोकी जाता॥
नमो नमो दुख भंज्जन राम। नमो नमो हरि पूरण काम॥
नमो नमो श्री हलधर वीरि। सांइीदास मनि में हरि धीर।४।

नमो नमो उोपाविन लोग। नमो नमो हरि पोषनि भोगि॥
नमो नमो पूरण परिमेश्वरि। नमो नमो हरि सर्व वसेश्वरि॥
नमो नमो हरि आदि जुगाद। नमो नमो करि मिटे उपाध॥
नमो नमो हरि गनका वीरि। नमो नमो प्रभ स्याम सरीरि॥
नमो नमो हरि दे दनदान। सांइीदास नमो भगिवान।५।

नमो नमो धारिन ब्रह्मंडि। नमो नमो कर्ता नउषंडि॥
नमो नमो हरि साध सहाइी। नमो नमो भग्तन सुषदाइी॥
नमो नमो हरि केवल ब्रह्म। नमो नमो हरि निर्मधरिम॥
नमो नमो माधो अविनाशी। नमो नमो काटी जम फासी॥
नमो नमो हरि दान दातारी। सांइीदास नमो ववित वारी।६।

नमो नमो निर्मल हरि जोत। नमो नमो सभ डारी पोट॥
नमो नमो हरि ज्ञानि विचारी। नमो नमो तारे अघि भारी॥
नमो नमो हरि जोति प्रकास। नमो नमो हरि पूरण आस॥
नमो नमो हरि पतित उधारन। नमो नमो हरि संगट टारन॥
नमो नमो हरि सर्वस मानो। सांइीदास नमो हरि जानो।७।

नमो नमो हरि कंस विडारन। नमो नमो हरि रावण मारन॥
नमो नमो हरिनाषस छेदन। नमो नमो दुसासनि वेधन॥
नमो नमो पतिताको तारन। नमो नमो हरि पयज निवारन॥
नमो नमो धारिन सभ धर्ना। नमो नमो हरि कारिन करिना॥
नमो नमो हरि एको एक। सांईदास मनि मोहरि टेक।८।

दो०—एको एक अनेक गत नाना रूप अपार।
सांईदास जोगी जंग्यम मुनि जना अंत्त ना पारावारि॥

अष्टपदी—१२

कै जोगी कै जोगि धियान। अंत न पावे श्री भगवानि॥
कै जोगी के लिंङ लडिकावे। सो भी प्रभ को अंत न पावे॥
कै मुन जनि जो मुषो न बोले। देस दिसंतर माही डोले॥
कैय वयरागी वनि को धावे। धाय धाय भ्रम थक जावे॥
बनि षंडि सोवे सांति नि आवे। सांईदास समझे तै गत पावे।१।

कैई उदासी रहे उदास। बनि माही है ताकों वास॥
कबिहूं नगिरि माहि नही आवे। भरिमति भरिमत गत नही पावें
जवि लग सतिगुरि चर्नन भेटे। तबि लग तिमर कहा मनि मेटे॥
घरि की सिद्ध कयसे करि पावे। जो वन मय भर्मे चित लावे॥
रहे उदास सदा मन माह। सांईदास सोई गत पाह।२।

कैई रूप संन्यासी हूए। मनि पाखनु भ्रमत ही मूए॥
हउमा मनि ते नाह भुलाने। तब ते वह पाखंडी जाने॥
जटा धारि भगिवे करि अंवरि। भुजा खडी कर भए डिगंबरि॥
नेत्र मूंद वह धरे धियान। कयसे गति पावे भगिवान॥
प्रगट रूप हरि सभ घट माह। सांईदास निज धन धरि ताहि।३।

कैई कहे जो हम भगवान। ताके रे मनि डूवा जानि॥
कैई कहें जो हम भए साध। सो विष्या की फासी बांध॥
कैई कहे जो जो हम भए पूरे। तांके कवूं न मिटे विसूरे॥
कैई कहे हरि अउरि न कोई। आपस को करि थापे सोई॥
कै भुल्ले विष्या अभिमानि। सांईदास अयसे अज्ञानि।४।

कैइी कहै जो हम निर्वानी। सो कयसे मिले सारंग्य पानी॥
कैइी कहे जो हम वुद्धवानु। सो मूर्ष करि अंद्धे जान॥
कैइी कहै जो हम सभ ऊचे। सोइी हय सभ ही ते नीचे॥
कैइी कहे जो हम परिउपकारी। सो कविहूं ना मिले मुरारी॥
कैइी कहे हम ब्रह्म संग्य राते। सांइीदास वह झूठ वकाते।५।

कैइी कहे हम सभ के राजे। तांके सदा न पूरे काजे॥
कैइी कहे हम ते कछु होया। सोने सदा सदा सुख खोया॥
कैइी कहे हम सरि कौं ना। सोई हय नीच जगत के मौना॥
कैइी कहे हम ज्ञानि विचारी। ते डूबे भय धार मझारी॥
कैइी कहे हम सभ ते रहते। सांइीदास विष्या मद वहते।६।

कैइी कहे हम हरि मतवाले। सो भर्मत हय जिउ वरिवाले॥
कैइी कहे हम हय सुंन्न वासी। सो फासे हय जगि की फासी॥
कैइी कहे हम सभ के दाते। सोइी आनि लोक ते खाते॥
कैइी कहे हम हय पतवानु। तांको रे मनि धृग कर्जान॥
कैइी कहे हम हय सुरि ज्ञान। सांइीदास ते मूरष जान।७।

कैइी कहे हम विप्प कहावे। सो हय अंध मुक्त नही पावे॥
कैइी कहे हम देवे दान। सो मूरष अंधे अज्ञान॥
कैइी कहै हम सांत सरूप। क्षिन मय होवे गहरा रूपु॥
कैइी कहे हम विद्यावान। पढि पढि भूले वेद पुरान॥
कैइी कहे हम रषत पिंडु। सांइीदास सो काया डंनु।८।

दो०—माया सभ जगि व्याप हय एक रहे अनिताह।
सांइीदास प्रेम भक्त अह निस करे सो जनि उत्तम वाहि॥

अष्टपदी—१३

मुष ते बोले अंवृत वानी। सोइी मुक्ते जानो प्रानी॥
मुष ते बोले सभ ते नीच। तांको लगे न विष्या कीच॥
मुष ते बोले हरि रस पीवे। सो तो आदि अंत मध जीवे॥
मुष ते बोले सहज सुभाइ। जिहि निज सुण सभ जगत अघाइ
मुष ते बोले राम उचारे। सांइीदास ताह चल हारे।१।

मुष ते बोले हरि गुनि गावे। सो तो प्रगटि बकुंठ सिधावे॥
मुष ते बोले हरि रस राचे। विष फल त्याग सुधा रस माचे॥
मुष ते बोले ब्रह्म विचारे। सदा सदा हरि अंतरि धारे॥
मुष ते बोले अंब्रत बयन। जिहि सुनि पावत हो सुष चयन॥
मुष ते बोले हरि रस चषे। सांझीदास हरि संग्य चिति रषे।२।

मुष ते बोले हर हर हरि। ताके सवद सदा दृढ करि॥
मुष ते बोले सभ सुध जान। सो तो हरि दर्गा परिवान॥
मुष ते बोले हय मध वानी। सहज सुध्व घटि माह समानी॥
मुष ते बोले हर्को नाम। जिह सुनि पावे जगि विश्राम॥
मुष ते बोले हरि इक जान। सांझीदास तां परि कुर्वान।३।

मुष ते बौले आतम चीन्हे। सो तो हर्ने मुक्ते कीन्हे॥
मुष ते बोले उलिटे पउनु। तांके मिट गए आवा गउनु॥
मुष ते बोले हरि चित धारे। पंचन वस करि ज्ञानि विचारे॥
मुष ते बोले दृढ़ करि ज्ञानि। जिहि सुन जगत लहत निर्वान॥
मुष ते बोले हरि लिव लाइ। सांझीदास सदा मुक्ताइ।४।

मुष ते बोले दुर्मत छाड। विषु फलि कटि सुधा फल गाड॥
मुष ते बोले षुल्हे कपाट। तांकों सूझे अठसठ हाटि॥
मुष ते बोले विष फल त्याग। हरि सिमरे ते पूरण भाग॥
मुष ते बोले हरि की गाल[1]। निस दिन सिमरे श्रीगोपाल॥
मुष ते बोले सुंन्न विराजे। सांझीदास सुष गहरे गाजे।५।

मुष ते बोले हरि संग्य हेत। विष्या मनि तजि हरि हरि चेत॥
मुष ते बोले हर्की वानी। सोइी जांनो ब्रह्म गियानी॥
मुषते बोले अगम्य अथाह। वाह वाह जे को वाहः॥
मुष ते बोले उनिमनि हरे। गुरि प्रसादि अनिभय जस कहे॥
मुष ते बोले हरि सो ध्यान। सांझीदास तिह पूरण जानि।६।

---

१. गाल>गल्ल=बात।

मुष ते बोले क्रहन कन्हैया। सो नरि सदा सदा सुषैया॥
मुष ते बोले अनिहदि सूझे। सो नरि अगिमि निगम विध बूझे
मुष ते बोले हरि विज्ञान। तिस जनि परि जाइीए कुर्वान॥
मुष ते बोले गुरि चर्न पषालु। तिस जन परि प्रभ आप दियालु॥
मुष ते बोले हरि नाम धिआवे। सांइीदास सोइी गति पावे।७।

मुष ते बोले हरि रस पीवे। सो नरि सदा ही जीवे॥
मुष ते बोले हर्चित धरे। सो जनि जीवे कवूं न मरे॥
मुष ते बोले सीता राम। तिस जनि सो जम नाही काम॥
मुष ते बोले प्रेम कहानी। हरि सिमिरण गति तिन हो जानी
मुष ते बोले निज घरि रहे। सांइीदास अविगति गत लहे।८।

सलोकु–अगम निगम सभ सोधयो अंत नाही गति पात।
सांइीदास एक रूप पसरयो ब्राह्मण षत्री जात॥

अष्टपदी—१४

अंत नहीं करुणा निध स्वामी। अंत नही हरि अंतर जामी॥
अंत नही धरिनी धरि गोविंद। अंत नाही पूरण परिमानंद॥
अंत नाही सागर अरि सलता[1]। अत नाही जो हरि संग मिलता॥
अंत नाही हय सूरज चंदा। अंत नाही हय मेर मुकंदा॥
अंत नाही घटि ज्ञान विचार। सांइीदास अंत नहि पार।१।

अंत नाही हय जल थल वास। अंत नाही हय धर्न अकास॥
अंत नाही बोलण चुप कर्ना। अंत नही हय जीवन मर्ना॥
अंत न तर्वरु अंत न पत्तर। अंतु न पउन पानी बासंतर॥
अंतु न सुन्न समाध हय अंत। अंतु न सांत उपाध हैय अंतु॥
अंतु नही जो जल थल जीया। सांइीदास अ अनंत हर् कीया।२।

अंत नहीं गंभीरि कउलास। अंत नही हय जोत प्रकास॥
अंत नही हय सुरि नरि देवा। अंत नाही हय प्रभ की सेवा॥
अंत नाही हय हर् के रूपु। अंत नाहीं हय तत्त सरूपु॥

---

१. सलता > सरिता, "रलयोरभेद:"।

अंत नहीं हय वेद पुरान। अंत नही हर् कीर्त वषान।।
अंत नाही अयुतार्ज कीन्। सांईदास हरि अंत को चीन्।३।

अंत न सपना अंत न भूपु। अंत न छाउ अंत नहि धुपु।।
अंत न मूरष अरि बुधवानु। अत न राम क्रहन भगिवान।।
अंत न पडे, ज्ञान नहि अंत। अंत न चोट साध नहि अंत।।
अंत न तिरया पुर्ष न अंत। अंत न पुंन्न पाप नहि अंत।।
अंत न धउल पताल नहि अंत। सांईदास प्रभ अंत बिअंत।४।

अंतहि स्वर्ग नर्क नह अंत। अंत नहि राग दोष नहि अंत।।
अंत नहि हस्त अंत नह घोड। अंत नहि निगम अंत नह थोड।।
अंत न फुल फलन वृष न अंत। अंत नहि घाटि वाट नहि अंत।।
अंत न देव दानू नहि अंत। अत न पशू प्रेत नहि अंत।।
अंत न जुगत अजुगति नहि अंत। सांईदास प्रभ सदा बियंत।५।

अंत न भूष तृपत नहि अंत। अंत न उतपत षपत न अंत।।
अंत न जीवण हतन न अंत। अंत न सोव जाग नहि अंत।।
अंत न जोगी जोग धियानी। अंत न मूरष अर सुर ज्ञानी।।
अंत नही सागर रतनागर। अंत नही प्रभ सभ गुन आगर।।
अंत विअंत अंत, को पावे। सांईदास धन नामि धियावे।६।

अंत न आन आप नहि अंतु। अंत पुछावण कहे न अंतु।।
अंत न धरिण धारण ब्रह्मंडि। अंत न सपत दीप नउषंड।।
अंत न सेस अंत नहि नागि। अंत अभागि अंत नह भागि।।
अंत न दीप न अंत पतंग्या। अंत अनंत अनंत तरंग्या।।
अंत अनंत अंत्तत निहारे। सांईदास दर्सन बलहारे।७।

अंत न पेषे ग्रह भगवान। अंत न हरि हर हर जान।।
अंत नहीं कउलापति के स्वर। अंत नही पूरण परिमेस्वर।।
अंत नहीं हर्नदकुमार। अंत नही हरि अपर अपारि।।
अंत नही, क्या अंत बषानूं। अंत कविन बिध कर्के जानूं।।
अंत नही क्या कह्ये अंत। सांईदास हर् जानि विअंत।।

सलोकु–सभना को प्रभ देत हय वर्धा कोइी नाहि।
सांइीदास जल थल जो जीव से सकले सिमरे ताह ॥

अष्टपदी—१५

साध देत हरि चोरिन देत। नरन्देत हरि ढोरन देत ॥
मूरिष सभ अज्ञानी देत। महा प्रसंन्न सुरि ज्ञानी देत ॥
तिरिआ देत पुर्ष भी देत। पूरण पूर्पूरि सभ लेत ॥
भर्म देत हरि सांतक देत। मद्धम देत कुल आगर देत ॥
देत देत क्या भाष सुनाऊ। सांइीदास प्रभ के बल जाऊ।१।

दीना नाथ दयाल दियाल। सभ जीयनि को हय प्रतिपाल ॥
या विनु दूजा अविरि न कोइ। जल थल भीतरि रहा समोइ ॥
स्वास स्वास में सभे सम्हारे। एक स्वास नाम नो विसारे ॥
जी जी की हरि सोझी धारे। पल पल छिन छिन काज सवारे ॥
अयसे प्रभ पर्संद सद वार। सांइीदास सदा बलहारि।२।

सभ जीयन को आप सहाइ। कउलापति हरि तृभवन राइ ॥
सभ जीयन को जानण योग। वा विन अउर न होया होग ॥
अयसे ठाकुर परि त्रल जाऊ। निसवासरि तांके गुन गाऊ ॥
गाय गाय गुण आतम तोषू। ब्रह्म अग्नि यह विध कर्पोषू ॥
प्राणनाथ को घट मय लय्ये। सांइीदास प्रभ के वल जय्ये।३।

दीन दियाल दया निध जानूं। पूरण पुर्ष सदा भगिवानूं ॥
वन तृण वृक्ष सलता परिवाह। जल थल भीतर वा हरि ताह ॥
या विनु अउर न सूझे कोइ। हरि समसरि, को दूजा होइ ॥
पलि पलि छिनि छिन ना विसरावो। स्वास स्वास हर्के गुनि गावो ॥
प्रेम प्रीत करि चित लाए। सांइीदास सदा गुण गाए।४।

अयसे प्रभ के वल वल जाइीए। उमगि उमग मन हर् जस गाइीए
प्रेम प्रीत चित में ठहिराइी। भ्रम प्रवाह को दिय वहाइी ॥
देवन हारि निरंजनि देव। आठ जाम लग हर्की सेव ॥
साध संज्ञ मिल गावो गीत। त्याग डारि चित ते विपरीति ॥
अंतरि गत हो भज भगिवान। सांइीदास निश्चे मनि मानि।५।

पल पल प्रेम बढाउो राम। आदि अंत सुफलो यहि काम।।
अउरि लालसा चितवनि त्यागि। राम नाम की सेवा लाग।।
प्रगिटि निशान वजे जगि माह। कछु संसा चित उपिजे नाह।।
साहिब मिल जवि साहवु हूआ। संसा तउ जो होवे दूया।।
एकु दुयी का षोवे मूल। सांइीदास मिल आनंद झूल।६।

चउथे पदि माही घरि वास। सांत सरोवरि माह विलास।।
ज्ञान पंखडी षोल्हे जाइ। सहज झूलणे झूले आइ।।
करि ववेक तुरिया घटि लयन। चउथे पदि मय सभ भए चयन।।
ज्ञानि ववेक रहत कछु नाह। चउथे पदि मय जाय मिलाह।।
निश्चल मारग सांत पदि जानु। सांइीदास तत्त लेय पछान।७।

सकल घटा कों देत हरी हर। रे मनि सिमरण ताह करी करि।।
तांकों त्याग न अउरी लाग। हरि रस रच विष्या सो भाग।।
सभ जगि देत कहाउ चिराऊ। अयसे हरि सभ माह लषाऊ।।
सर्व घटा मय आपे रहया। विन भगिवानि न दूजा भया।।
प्रभ की कथा कहा कवि कह्ये। सांइीदास हरि भज सुष लह्ये।८।

सलोकु–मिथ्या विन हरि सिमरने तनि धन जोविन माल।
सांइीदास मिथ्या विष्या चित धरय आण आण जंज्जाल।।

अष्टपदी—१६

मिथ्या परि नारी चित राषे। मिथ्या सो विनु हरि कुछ भाषे।।
मिथ्या हरि गुण विन कुछ बोले। मिथ्या देस दिसंतर डोले।।
मिथ्या सो पर्द्रव्व चित धारे। मिथ्या सो विष्या संग भरे।।
मिथ्या धनि जोविन विन नाम। मिथ्या विन हरि सकले काम।।
मिथ्या विन हरि सिमरण देहः। सांइीदास सिमरण विनषेहः।१।

मिथ्या हर्ष शोक जो व्यापे। मिथ्या विन हरि अउर जु जापे।।
मिथ्या सुति दारा परिवार। मिथ्या नाम विना अउतारि।।
मिथ्या पहरण षावन भोगि। मिथ्या ध्यानि विना सभ जोग।।
मिथ्या प्रेम विना मुष वानी। मिथ्या धरे आन विषानी।।
मिथ्या थान थनंतर वासा। सांइीदास मिथा सभ आसा।२।

मिथ्या भक्त[1] विना जो करे। मिथ्या परि प्रीक्षा चित धरे॥
मिथ्या विन हरि सकले काम। मिथ्या विन रसना हर्नाम॥
मिथ्या विन हरि कथा गियान। मिथ्या विन हरि आउना जानु॥
मिथ्या रूप रंज्ञ अभमान। मिथ्या माया को करि जान॥
मिथ्या हस्त अश्व असिवारी। सांझीदास तूं सिमर मुरारी।३।

मिथ्या राम नाम विन वानी। मिथ्या प्रेम भक्त विन हानी॥
मिथ्या पर्निंद्या जो करे। मिथ्या लालच माया धरे॥
मिथ्या विन हरि नाम जु लए। मिथ्या हरि को तज चित दए॥
मिथ्या ग्रह कारज वियुहारि। मिथ्या हरि विन अउर विचारि॥
मिथ्या सति गुरि चर्न न लागे। सांझीदास मिथ्या विन जागे।४।

मिथ्या श्रविण परिनिंद्या राचे। मिथ्या हर् तज विक्ष्या माचे॥
मिथ्या राज बिना हरि नाम। मिथ्या जोवन माने धाम॥
मिथ्या अंवरि अंग हढावे। मिथ्या परि विकारि कों धावे॥
मिथ्या परि धरि मूसन जाइ। मिथ्या चित जो लोभ लुभाइ॥
मिथ्या पिंडु प्राण भय होवे। सांझीदास हर भज सुष सोवे।५।

मिथ्या साध हरि अंतर जांने। मिथ्या काम क्रोध मनि मांने॥
मिथ्या भूष प्यास जो व्यापे। मिथ्या सीत धाम कों तापे॥
मिथ्या बहुत नींद सो प्यार। मिथ्या वचनि न हो सच पारि॥
मिथ्या पगि तीरथ नह जाइ। मिथ्या कर्ना टहिल कराइ॥
मिथ्या विन बूझे सभ होइ। सांझीदास मिथ्या सभ लोइ।६।

मिथ्या काम क्रोध हंकारि। मिथ्या नामि विना संसारि॥
मिथ्या उपजि विंस जगि माह। जवि लगि हरि सिमरण हो साह
मिथ्या हरि विन अउरि निहारे। मिथ्या हरि विन देहा जारे॥
मिथ्या हरि विन अउरि जो ओटि। मिथ्या हरि विन धंधा पोटि॥
मिथ्या विन भगवान सभ जान। सांझोदास सोझी परिवानि।७।

---

१. भक्त=श्रद्धा।

मिथ्या साध चोरि जो होवे। मिथ्या तन धन हरि विन षोवे॥
मिथ्या बहु पुत हित संग्य राता। मिथ्या नरि जोविन मदमाता॥
मिथ्या विष्या उठे तरंगा। मिथ्या विन हरि राचे रंगा॥
मिथ्या नयन भये जगि रूपु। मिथ्या सपनि भयो जो भूपु॥
मिथ्या हरि विन तीनों लोक। सांइीदास मिथ्या सभ थोक।८।

सलोकु–साधू हरि अंतर्नही वेद पुकार्त चारि।
सांइीदास हरि साधू अंतिर करे सो ते सदा दुःषारि॥

अष्टपदी—१७

हरि साधू अंतर जो करे। आवे जावे जनिमे मरे॥
हरि मय साध साध हरि होइ। अयसो ज्ञान विचारे कोइ॥
ज्ञानि विचारे सो मुक्ताइ। तांको हर्जी आप सहाइ॥
हरि सहाइ कारज सभ सरे। जनिम जनिम के परि दुष हरे॥
हरि सहाइ होइ मुक्ता करे। सांइीदास हरि सर्नी तरे।१।

अंतर नाह साध अरि राम। साध सर्न पायो विश्राम॥
साध के संग सदा सुष होवे। लोभ मोह मिल दर्सन षोवे॥
साध का संग्य मिले वडि भाग। गुर प्रसादि हरि सेवा लाग॥
हरि सेवा लागे जो कोइ। आवागउन को संसा षोइ॥
सेवा लाग परिम सुष होइ। सांइीदास जनि उत्तम सोइ।२।

सेवा करे सो नयुनिध पावे। साध राम करि एक धयावे॥
साध राम कुछ भेद न जाने। हरि सेवा सेती मनि मांने॥
जो नरि हर्की सेवा लागे। पंचि भूत तांके उठि भागे॥
हरि सेवा ते सभ दुष जाइ। वहुडि वारि जूंनी नहि आइ॥
लागे सेवा हर्जस करं। सांइीदास भय सागर तरे।३।

सागिर तरे जु सभ सम जांने। साध राम अंतर नहीं आने॥
जो अंतर जाने सो दुष पाइ। वारि वारि जूंनी भर्माइ॥
जूंनी भर्मे विन गुरि पूरे। सो नरि सदा सदा मनि झूरे॥
हरि सिमरे सो बहु सुष पाइ। आवा गउन कों भर्म मिटाइ॥
भरिम मिटे लागे हरि भेतु। सांइीदास सति गुर सेतु।४।

महा कष्ट दुख लागे देहा। विष्या लागन को फल एहा॥
भरिमत भरमत वहु थक जाइ। गुरि विन कयसे मार्ग पाइ॥
वूझे हरि गुर सेवा लागे। अंवृत रस गह विष्या त्यागे॥
जवि विष्या का कीनो त्याग। उदे भए पूरण बल भागि॥
त्यागे विष्या सुषिया होइ। सांईदास जनि मुक्ता सोइ।५।

भक्त होइ हरि भक्त पछाने। मोरि कीटि जीयु इक जाने॥
जयसे हस्ती हस्त फुन जयसा। जयसे सोवे जागे तयसा॥
जयसे हर्ष तयसे ही सोग। सदा नंद न कबूं वियोग॥
जयसे माटी कंचन अयसा। जयसे पाथर हीरा तयसा॥
सो दर्गा होवे परिवान। सांईदास तिस तो कुर्वान।६।

तिह वियोग शोक कछु नाह। जो हरि सोध लये घटि माह॥
सोधे मन हरि अंतर माह। सहज समाध विषे उरिझाहि॥
लावे लिवि अरि साधे पउनु। तांके मिटि जा आवा गउनु॥
आवागवन भर्म मिटि जाइ। गुरि प्रसादि हरि दर्सन पाइ॥
आवा गउन मिटे हरि सेवा। सांईदास सर्न गुरि देवा।७।

सर्न गुरों की जो को आवे। जनिम जनिम सोई मुक्तावे॥
मुक्ता होइ परम गति पावे। रामनाम अहि निस लिव लावे॥
लावे लिव विष्या ते रहे। गुरि प्रसाद अन भय पद गहे॥
भक्त भाव जवि आतम लीना। सांत सरोवरि वासा कीना॥
सांति सरोवरि को वियुहारि। सांईदास दास चित्त धारि।८।

सलोकु–साधो हरि रस पीजिये तजीए विष्या विकारि।
सांईदास सोहे हंसा जाप जप तिह दर्स बलहारि॥

अष्टपदी—१८

साधो पीजे हरि रस नीक। जिहि पीए सुष होवे चीत॥
अमर होइ काल भय जाइ। या जग सोफन रूप दिषाइ॥
महा परिम कलयाण सरूपु। मंगल रूपी महा अनूंपु॥
जिउ मदिमाते कुंजर डोले। जयसे मृग वाणी मध बोले॥
अयसो हरि रस पी मेरे भाई। सांईदास अचो चित लाई।१।

राम रसायण जिन्न रे पीआ। सो नहि मूआ जीविन जीआ॥
जीयन जीयन रह्यो समो। वांते नहीं अउर फुनि कोइ॥
सभ जीयन कों चेते सोइ। वावन दूजा अउर न होइ॥
हाथ जोरि करि ठाढे भए। करि डंडउत[1] पाहन पए॥
अयसो हरि रस जो जनि पीए। सांईदास सो जुग जुग जीए।२।

राम रसाइण अयसो वीरि। पीवित मिटि जा पीडि सरीरि॥
सुष मेटे दुष जाय भुलाइ। परिम पुर्ष जवि होइ सहाइ॥
पर्म पुर्ष को जाणे जोइ। तांको दुख न लागे कोइ॥
निर्मल पंङ्कज जपो सरूपु। पंङ्कज पद भज भए अनूपू॥
दुष को मूल काटि तिन दीन। सांईदास सो सदा सुषीन।३।

दुःखु गिया जवि पायो राम। राम मिल्यो भए सुफले काम॥
राम नाम सो लागी प्रीत। भूल गई सभ जगि की रीति॥
लोक लाजि सभ दीनि डारि। भेटे पर्म पुर्ष इक बारि॥
रोम रोम भयो राम सरूपु। कहा कहुं कछु अचरज रूपु॥
हर्जी भज हर्जी होइ रहे। सांईदास दास पद गहे।४।

हरि सो अपिना रूपु निहारा। भूल गिया जगि धंधा सारा॥
जित देषो तित पूरण राम। राम भयो पायो विश्राम॥
वाह वाह जी कयसा भया। मति उत्तम कछु जाइ न कहया॥
अयसो राम भजन परतापु। मिटे भजन हर्तीनो ताप॥
राम भजिन दर्गा नही हान। सांईदास दास परिवान।५।

राम नाम से राषे ध्यान। तांको क्षेम कुशल कलयान॥
सदा सुषी दुष भयो विनाश। आनंद मंगल सहज हुलास॥
मंगल रूपी आठों जाम। जम वयरी सो कवूं न काम॥
जम हो दास अधीनि हय सदा। गुरिचर्नी जो राषे रिदा॥
चूक गई हरि लीयो पछान। सांईदास नही जम काण।६।

---

१. डंडउत=डंडौत>दंडवत्।

हरि सो जविही भैय सयान। मांनो पायो परिम निधान।।
पूर्ण पुर्ष बसे मनि माह। चूक गए दुख सकले ताह।।
संसा चूका भ्रम भय भागा। अनिभय सेतीया मनि लागा।।
लागा मन जवि अनभय नाल। चूक गए सकले जंजाल।।
सहिजे भेटे चतर सरूपु। सांईदास भए आनंदि रूपु।७।

पङ्कज पदि घरि वासा कीना। डोल डुलावण चित तज दीना।।
गावित गावत गावे फूल। उनिमनी कला झूलणे झूल।।
झूलति सहज पालणे माह। तीन ताप की मम ता नाह।।
पानी पउन अग्नि घरि वास। पांच तत्त ते रहे उदास।।
अयसी ठउर विषे मन दीना। सांईदास तहा वासा कीनां।८।

दो०—दुष्यि विनासन स्याम घन नाथ अनाथन राम।
सांईदास तांकी सर्नी आईये रे मन आठो जाम।।

अष्टपदी—१९

संग्यी राम विना को नाह। या तू समझ देष मनि माह।।
निकटि कठन जह होवे ठउर। हरि सहाइ विन नाही अउर।।
माति पिता वनता सुति मीत। छिनि मातर हय जगि की रीत।।
जब मह भयानक काल भय होवे। हर्का नाम सकल भय षोवे।।
अयसो नाम जपो मनि मेरे। सांईदास सुष होइ घनेरे।१।

प्रथिवी पति राच्यो सुष माह। हर्के सिमरण सम सरि नाह।।
दुःखि विआपे विन हर्नामि। हरि सिमरण विन विर्थे काम।।
माया मोह तजो हो स्यानु। हरि सिमरण पायो निध ज्ञान।।
गुरि मिल लीजै अयसी सीख। जयसे अंवृत उपिजयो ईख।।
आदि पुर्ष का पायो भेव। सांईदास दास गुर सेव।२।

गुरि मिल पायो निर्मल ज्ञानि। प्रेम भक्त कों लियो पछान।।
जांते उपिजे निर्मल प्रीत। प्रेम भक्त की एही रीत।।
लाष करोडी वंधन तोडि। आए श्री जगि पद की उोड।।
मार्ग अंधकारि मिट गया। रोम रोम महि आनंद भया।।
गुरि मिल लीनो तत्त पछान। सांईदास दास यहि ज्ञान।३।

हर्का नामु जपति दुष जाइ। प्रेम भक्ति जिह उपिजे आइ॥
प्रेम भक्त करि गावो गीत। साध जनां की पावो रीत॥
हर के गुण गावो दिन रयन। मुष ते बोलो मीठे वयन॥
यह वयनन सो हरि गुनि गाइ। महा अनंदि रिदे उपिजाइ॥
आदि अंति हरि जी कों ध्यान। सांइीदास दास चित आन।४।

देषो साधो नयन उघाड़। वह्यो जात जग लेह सम्हाल॥
पल पल घटे वछे नहि आइ। हरि सिमरण मनि में उपिजाइ॥
मार्ग माहि सुहेला जा। हरि चर्नी लग ठाकनिपा॥
महासुषी करि हरि हय तुह जपसो। वंधनि तोडि वही सुष सो॥
आवा गवनि भरिम मिट जा। सांइीदास सदा हरि ध्याइ।५।

हरि ध्यायो पायो निध गियान। राम राम सो लागो ध्यान॥
राम भजन तन मनि सुष हो। वंधनि तोडि वही सुष सो॥
वहुडे दुःख न लागे आ। वाके अंदर अंग उढा॥
अनेक राग उपिजे छिन माह। जिह समान कछु होवे नाह॥
सुःषि पावे सिमरे वनिवारी। सांइीदास दास गत नयारी।६।

एक दुइी को कीजे नास। तवि निश्चल घरि होवे वास॥
पर्म पुर्ष तवि नयन दिखा। आपा उलटि आप समा॥
आप समाय भयो तेसो। जांते वहुडे हान न हो॥
आतम रूपी रह्यो समाय। जित देषो तित आत्मरा॥
कहा कहे हय अयसा जयसा। सांइीदास दास हय तयसा।७।

देषों भाइी अचरज वांनी। या नयनन मय वसत पछानी॥
वांको घटि मय पायो भेवु। जो नरि लागो हरि की सेवि॥
हरि सेवा मय रह्यो समा। हर् भज आपा दीयो तजा॥
पांच भूत का कीनो नास्। रोम रोम मय भयो हुलास॥
जवि पायो तवि आप भुलाइ। सांइीदास दास सर्नाइ।८।

सलोकु–अविधू अविध सम्हाल लय सुफनो सो संसार।
सांइीदास पाउ पलक लागे नही छिनि मय विनसन हारि॥

अष्टपदी—२०

अविधू लीजे अविध सम्हारी। पलि पलि घटे वधे नहि वारी॥
कंचन कोटि वहुड गत ले। विन हरि भजन कहा कर्ले॥
जिहि वस राग रंग सभ भोग्। तिह सेती होवे संज्जोग्॥
एक भांत के पञ्च कहायन। अनेक भांति अंबिर अंग लायन्॥
हरि भजि लीजे समा पछान। सांइीदास दास सो जान।१।

याह समा फिर हाथ नि आवे। वहु जूंन भर्मे पचतावे॥
जिउ जानो भज लय रघुराइी। अटल राज महा सुषिदाइी॥
अवि जस के भजे रघुराइी। राज न टले महासुष पाइी॥
अयसो राज नि कविहूं त्यागे। जो जनि हर्की सेवा लागे॥
विष्या तजि हरि सो करि प्यारि। दुर्लभ देह का होय उधारि॥
अअसे लीजे तत्त पछानि। सांइीदास दास गुरि ज्ञान।२।

अविधू वाल अवस्ता वीती। हो अचेत हरि भक्त नि कीती॥
भरि जोविन तिरया सङ्ग राता। अति अभिमानि जूए मदमाता॥
तरन देही विष्या भरि डोले। सुष ते सीधे वचन न बोले॥
वृद्ध भया तवि आलस देही। काज न सरे भए जवि क्षेही॥
भजिए पूरण श्री भगवान। सांइीदास हरि लियो पछान॥

जिहि प्रसादि होय सुष घनेरा। सारा जगत रहे हो चेरा॥
जिहि प्रसाद पायो रसभोग। चर्नी लागे तीनों लोक॥
जिह प्रसादि अंवरि अंग्य लावे। रे मनि ताकों किउ विसरावे॥
जिह प्रसादि पावे सुष मान। रे मनि राषों तांसो ध्यान॥
एक निमष हर् नां विसरा। सांइीदास दास गुण गा।४।

धनि जोवन का तजए मान। निसि दिन भजए श्री भगिवान॥
स्वास स्वास गुण गावो मीत। प्रेम भक्त की लीजे रीत॥
एक पलिक विन भजन न खो। रे मनि अउसरि बीते जो॥
भजिए पूर्ण पुर्ष निधान। तांके सिमरण कबूं न हान॥
अयसो भजिए तजिए मान। गोविंद गोविंद गोविंद जानि॥
अयसे प्रभ ते सद सद वारि। सांइीदास दास वलहारि।५।

कुल कुटंबि की ओटि तियाग। राम नाम की सेवा लाग॥
जिह प्रसादि कारज सभ सरे। धरिमराय धरि पायन परे॥
करे वेनती दो करि जोरे। पायन लागे कबूं न भूरे॥
अयसो राम भजिन परितापु। निस वासरि हर्को जप जाप॥
हरि भजिए तजिए अभिमान। सांइीदास दास हरि ध्यान।६।

इह अउसरि पाए वडिभाग। कोऊ अक्षर पूरब जाग॥
इह औसर जो राम सम्हारे। आवागउनि को संसा टारे॥
निश्चल रहे चले नहीं कविही। हरि सिमरे गति पावे तविही॥
कहूं तोह हरि लीजे कान। दृढ़ प्रतीत निश्चे जी जानि॥
इह अउसर भज लय रघनाथ। सांइीदास दास सुष साथ।७।

हर्की कथा करो मनि ला। सदा सदा हर्के गुण गा॥
साध सङ्ग सो धारो प्रीति। तिहि प्रसादि होइ निर्मल चीत॥
देह रोग कों अउखध एह। साध सङ्ग मिल हर् भज लेह॥
पल पल गावो गुण गोपाल। तातकाल मय करे उधारि॥
निरभय पदि मय पायो वास। हरि दर्सन की पूरी आस॥
आदिअंत हरि होय सहा। सांइीदास दास सर्नाइ।८।

सलोकु–तू राजा सभ सयन को तोरो वड परिताप्।
सांइीदास जिनि तूं पाया प्रीत कर मेटे सभ संत्ताप्॥

अष्टपदी—२१

तूं राजा सभ भूम को सभ सयना तेरी।
तुही गरीविनवाज हय कटि वेडी मेरी॥
निसवासरि तुमरे गुण गावो। प्रेम प्रीति चित माहि बढावो॥
जो जनि तुमरी सर्नी आवे। तातकाल वयकुंठ सिधावे॥
हर्की सर्न पडो रे भाइी। तिहि प्रसादि दुभधा मिटि जाइी॥
जो जनि हर्की सर्नीपआ। सांइीदास दास तिह भया।१।

पांच भूत का सुनो विचारि। एक एक कों मनि मय धारि॥
तिन्न तिन्न तिह घटि मय वास। जो चित उपिजे तिह पर्कास॥
फुनि सुभावि तिन का सुन ले। प्रेम प्रीत करि आतम दे॥

एक एक के पांचों भेद। सुनो कान धरि कूकत वेद॥
जो जनि पांच भूत से रह्या। सांईदास दास तिह भया।२।

पांच भूत का भेदि बताऊ। रे मनि तुझि को कह समझाऊ॥
फुन इह पांच कों करो वीचारि। चित अंतर लियो श्रविनी धारि॥
फुन तत पांच सुनो मेरे भाई। तांको भेद सभ दियों बताई॥
जैउ पिंड निंद्रा वस कीन। षुध्या तृषा सुनो परिवीन॥
पांच तत्त की सिष्ट रचाई। सांईदास प्रभ वनत बनाई।३।

कांनो धरि सुनि लीजै भाई। तिह सुभावि सभ दियो बताई॥
इनि पांचों का भेद वषानो। गुरि मुष होइ सोई जनि जानो॥
वहुडि पांच के भेद वताऊं। गुप्त वाति करि प्रगिटि दिषाऊ॥
माया मोह राग रस भोग। पांच भूत कों हय संजोगि॥
यांको लीजे मनि मय धारि। सांईदास फुनि कीयो विचारि।४।

प्रथिवी को ग्रहि रिदा कहावे। द्वार गतां ते वेद वकावे॥
खान पीनि अहारि पछानि। लालच लोभ विउहारि बषान॥
फुनि बानी को सुनो वीचारि। हरि प्रसादि करि अंतरि धारि॥
तुरिआ माह अहारि करी न। काम क्रोध मनि वस करि लीनि॥
नीकी वानी हर्जस कीजै। सांईदास सोऊ घटि लीजै।५।

तपा तेज तत गृह जांनो। नेत्र माह द्वारि पहिचानों॥
दिष्ट अहारि मोह विउहारि। पंच तत्त कों एही विचारि॥
नाम कविल पायो घरि वास। पंखडी कला भयो परिकास॥
द्वादस द्वारे ताके कही। गंध सुगंध अहारि हय वही॥
नरि इछा विउहारि कहावे। सांईदास को गुरि मुष पावे।६।

ग्रहि वृह्मंडि अकास पछान। फुन ते द्वारे कहो कान्॥
नादि अहार अहं विउहारं। सोहं हंसा जाप विचारं॥
या कुटंम सभ नावक मा। तू षेवट हरि पार तरा॥
गुरि मिल लीजे मंतरि वीरि। तवि भय सागर उतिरे तीरि॥
लष चउरासी भर्म न हो। भजि सांईदास दास गुरि सो।७।

गुरि सेवे हर्की गति जाने। हर्ष शोक मनि महि नही आने॥
निश्चल राज रहै हय वीरि। आविनि जाविन की मिटि पीडि॥
गहरि गंभीरि गुपाल पछान। आठो पहिरि धरो हरि ध्यान॥
एक स्वास विर्था ना खो। हरि हरि सिमर लेय सुष हो॥
या सभ ही को ऊपरि कहो। हरि हरि सिमर सदा सुष लहो॥
चूक गयो सकिलो भ्रम भाइी। सांइीदास दास हरि ध्याइी।८।

दो०—मनि ते छाडो लालसा हर्जी रिदे वसा।
सांइीदास हरि दर्सन चित लाइए रहो तिसी अघा॥

अष्टपदी—२२

छाडि लालसा हरि गुण गा। हरि दर्सन की प्रीति बढा॥
सहिज सुभा मिले जो आ। हर्ष मान हो लीजे सा॥
अउर लालसा मूल नि कीजै। प्रेम प्रीति करि हरि रस पीजै॥
जिहि ठाकुरु सो प्रीति अति हो। तिस सो करे वराविर को॥
जो भावे तो प्राप्त दे। सांइीदास भावे फिर से।१।

चर्न लागि करि जोरि खलो। जो कछु हरि भावे सो हो॥
ठाकुर हमरो अपरि अपारि। निमसकार् कीने सदवारि॥
जांको निमसकार मनि कीजै। कहु कयसे फिर उत्तर दीजै॥
ताकी लीजै आज्ञा मानि। जो कुछ करे सोइी भगिवान॥
या विध लीजै अंतिर धारि। सांइीदास दास वीचारि।२।

हर हरि हर हर हर हर हरी। आठ पहरि मनि हरि हरि करी॥
महा नंद अनंदि आनंद। स्वास स्वास सिमरो गोविंद॥
क्षेम कुशल अनिरोगी देह। राम नाम सिमरण कर लेह॥
हरि आज्ञा लय मस्तक धारि। स्वास स्वास हरि करे जुहारि॥
प्रेम भक्त करि हरि दरि सूझे। सांइीदास दास यहु बूझे।३।

माति पिता भाइी सुपिदाइी। विन हरि रे मन कौन सहाइी॥
जम को मारग महा दुखार। हरि सिमरण करि होय उधार॥
प्रेम प्रीत का वीजु वो। अनभय क्षेती नीकी हो॥

ए क्षेती नहि कबूं न पूटे। अक्षे अषंडि नहि हरि लव चूटे ॥
हरि हरि हरि हरि रिदे पछानो। सांझीदास दास यहु जानो ।४।

निर्धन को धनि हय भगिवान। रे मनि मेरे अयसे जान ॥
जिन कों मान त्रान हरि हो। अयसो अविर न होवे कोइ ॥
अउरि कउन की कीजे कान। जवि ते पाए श्री भगिवान ॥
वेर वेरि हरि परि कुर्बानी। सांझीदास दास गति जानी ।५।

जो हरि भावे सोई भला। सो अविचल कविहूं ना चला ॥
अयसी धारि लेय मन माह। हरि प्रसादि होवे सुष ताहि ॥
फूली वेल लगो फल घना। हरि प्रसादि सुष होवे तना ॥
भजिए हरि तजिए अभमान। प्रेम प्रीत घटि अंतर आन ॥
हर्भजिए सुष रहो समा। सांझीदास दास सर्ना ।६।

रे मन हरि हरि हर्कोध्या। हर्के सिमरण वहु सुष पा ॥
हरि हर् कहते भागिन रोग। प्रापति होय महा सुष भोगि ॥
महा भोग हरि रस को पावे। नाम हरी यहु वेद वकावे ॥
तिहि समानि दूजा नही कोई। तीनि लोक ढूडो नहि होई ॥
अयसे गुरि मल लीजै ज्ञानि। भजि सांझीदास दास भगिवान ।७।

रे मनि तू भजि भगिवान। विन भगिवान न दूजा जान ॥
अयसो अउर समरथ हय को। जिह भजिए आतम सुष हो ॥
एक पलक मय जगत उपा। पलिक माह पर्लय दिखला ॥
हर् दर्गा जो पेखन हो। वहुड लालसो रहे नि कोइ ॥
हरि सिमरणु मनि मह उपिजा। सांझीदास दास चित ला ।८।

दो०—विना भजिन भगिवांन के विर्थे सकले काम।
सांझीदास जिहवा काटि नकारीए जो उचिरे नही नाम ॥

अष्टपदी—२३

भजिन विना विर्थे सभ काम। रसना काटो कहे न राम ॥
विर्थे नयनि जु हर्विन देषे। विन भगिवान न दूजो पेषे ॥
विर्थे कान परि निंद्या राते। अंव्रत तज विष्या सो माते ॥

विर्थे हाथ टहल नहि धारे। हरि संत्तन सेवा न विचारे॥
विर्थे पगि तीर्थ नहि जाय। सांइीदास कयसे सुष पाह।१।

विर्था चित जो चले विकारा। तटि तीरथ गुर मनि नह धारा॥
विर्थी देह विना हर्नामि। विन हरि नाम न कतए काम॥
विर्था राजि माल अभमान। विर्था रंग रूप करि जानि॥
विर्था धनि हरि संत न काज। अंत काल आवे दर्लाज॥
विर्थी अउध बिन हरि होइ। सांइीदास विर्थे त्रयलोइ।२।

दानि पुंन्य तपस्या करे। विना कामन दुविकी लय मरे॥
परिदछनि प्रथिवी सभ दे। ऊर्ध पांउ करि झूलण ले॥
अग्नि विषे जो जारे प्रान। पउन अहार करे धरि ध्यान॥
सिहजा भूमि दान जवि धारे। जो को मेरि एही प्रन तारे॥
विना भजिन विर्था सभ हो। सांइीदास दास भज सो।३।

निउली कर्म करे चितु ला। चेतन हो जी दया वसा॥
जङम रूपी लिङ लडिकावै। जोगी होकै कांन पडावै॥
वयरागी वनि षंड सिधारे। कुल कुटंबि तज होय नियारे॥
होइ अपर्सन पर्से काहूं। मानि महत मय डूबे वाहू॥
भेष सकल विर्थो विन नाम। हर्भज लीजै आठो जाम॥
सकल सिष्ट चेरी हो रहे। साइीदास दास पदि गहे।४।

पंडितु वेद पडे पडि मूआ। भेदी हर्के भजन न हूआ॥
वेद सार कछु हाथ न आयो। वेद सारि को मर्म नि पायो॥
आपस को पंडित करि जाना। हर्को मार्ग रिदे भुलाना॥
परि निंद्या सो रह्यो समा। प्रान पुर्ष दीउो विसरा॥
हर्जी घटि घट भीतर लहो। सांइीदास दास पदि गहो।५।

हरि विन अउध विहानी अयसे। मेघ विना हो क्षेती जयसे॥
हरि सिमरण विन किते न काज। पंख विना हय जयसे वाज॥
जगि मय विर्था आवन भयो। हर्को नाम नि मन मय लयो॥
न चूकी कान न अनभय जी। वह नहि मिलयो अनभय पी॥
काम क्रोध माया मदि तजिए। सांइीदास दास हर्भजिए।६।

तजो सग्रानप सकल सरीर। हर्को भजि लय निसि दन वीरि॥
वहुड वारि नहि ग्राविन हो। दर्गा ठाकि नि साके को॥
माया मोह तियागो चीत। हरि सिमरण की लीजै रीत॥
जो ग्रायो क्या संग लियायो। ग्रंत कालि ग्रायो उठ धायो॥
माटी देही जव कव हान्। तिहि ऊपरि क्या करह गुमान॥
विमल छाडि ग्रउसरि वहि जा। सांईदास दास सर्ना।७।

इह ग्रउसरि फरि हाथ न ग्रावे। मानिस देही क्या फरि पावै॥
ग्रवि कै चूकै ठविर न को। लष चउरासी भर्मत हो॥
ग्रातम हो परिमातम पा। मनि मनिसा नास करा॥
ना मनूग्रा ना मनिसा को। जवि ते लीनि परम गत हों॥
कयसे विन सिमरण कल्यान। गहु सांईदास दास जी जानि॥

दो०—सविद रूप ग्ररूप हय ग्रंत लषे नहि कोइ।
सांईदास जो हर्भजे जगि ते न्यारा हो॥

ग्रष्टपदी—२४

सविद रूप लषे जनि सो। रूप रेष ते न्यारा हो॥
जगि कीयाह एक न लागे। ब्रह्म ग्रग्नि घटि भीतिर जागे॥
ग्रनाहद धुन सो लागो ध्यान। सो जनि पर्से श्री भगिवान॥
जिह जनि हर्का दर्सन पायो। वहुडि वारि जूंनी नहि ग्रायो॥
जहा बसे हरि चतर प्रवीन। सांईदास दास तहां लीन।१।

संत जना पायो घटि माह। हरि प्रसादि कछु ग्रंतरि नाह॥
देषो तो प्रभ की चतुराई। या जगि कयसी वनित बनाई॥
को कयसा को कयसा कीन। को मूरख को चतिर प्रवीनि॥
को काहूं की जाणे नाह। सभ गलतान ग्राप ही माह॥
ग्रयसे नरि हरि रूप ग्रपार। सांईदास दास वलहार।२।

ग्रयसे प्रभ ते वल वल जाईए। ग्राठ पहर्ता गुनि गाईए॥
ग्रक्षे षंडि ग्रषंडि नहि को। पसर रह्यो हय जल थल सो॥
जो दीसे सोई हय ग्रागे। कविहूं सोवे कविहूं जागे॥
जवि सोवे तबि सुंन्न कहा। जवि जागे तवि चेत नरा॥
सोवित जागृत एको जयसा। सांईदास दास हो ग्रयसा।३।

ना जागे ना सोवे सो। अयसो सुन्न समाधी होइ॥
आतम कों अयसो विसथार। तिह धरि चीत हरि चेत निहार॥
कोटि अकास धर्न अरु प्याला। आत्म को विसथारि निराला॥
जो दीसे सो आतिम राम। बिना राम ना दूजो जान॥
आतम परिमातम इकु माने। सांईदास दास यहु जाने।४।

अयसो आतम जाने जो। हरि सो मिले नि बिछडा हो॥
जयसे सलता सिंध मिला। वहुडि प्रवाह नि नकसनया॥
जवि अयसे आतम जनि जाना। तवि बोले पूरण भगिवाना॥
तुम निज भक्ता भक्त हमारे। तुम हम ते नहि कबूं निआरे॥
निसवासरि हम तुमरे माही। हमय तुमय कछु भेद नही॥
हरि साध कछु भेदि न जाने। सांईदास दास सच माने।५।

जो जनि तुमरी सेवा करी। तुम वांछति करि मनि मय धरी॥
साध संत हरि एकोएक। समझ देष चित करो विवेक॥
हरि साधन मय अंतरि नाही। साध जना पायो घटि माही॥
जयसे जल तरङ्ग नहि न्यारा। अयसे साधा हरि चित धारा॥
सो सेवा तुमरी ठहिराई। सांईदास हरि होइ सहाई।६।

हरि साधा नहि जोत नआरी। आदि पुर्ष होवित ततकारी॥
हरि सोधो मय भेद को नाह। यातू समझ देष मनि माह॥
सेवक स्वामी होवत आयो। जिन मनि वच करि सेवि करायो॥
दृढ मति सो सेवा दृढ कीजै। विन सेवा कछु अवर न लीजै॥
अयसो पुर्ष भयो मतिकारी। सांईदास तिहि मिलयो मुरारी।७।

दीना नाथ दया निध स्वामी। करि किरपा प्रभ अंतिर जामी॥
अपिना नाम दानि मोह दीजै। प्रभि जी मो परि किरपा कीजै॥
अउगनि हमरे नहि चितारौ। करि किरिपा पतिता को तारो॥
तुमरे दर्पर करो पुकार। हो दियाल मोह करो उधारि॥
हरि भावे तो होइ क्रपाल। सांईदास प्रभ भयो दियाल।८।

दो०—अंव्रत हर्को नामु हय जो अचिवे जन को।
सांईदास अवृत वानी जो पडे मुक्त पराप्त हो॥

इति रामाय नमः अष्टपदी २४